₹ २०/-
हम सबके
अटल जी
विशेषाङ्क–२
राष्ट्रधर्म
आषाढ (शुद्ध/अधिक)-२०७२
जून-२०१५
हिन्दू
तन मन
हिन्दू
जीवन,
रग-रग
हिन्दू
मेरा
परिचय।
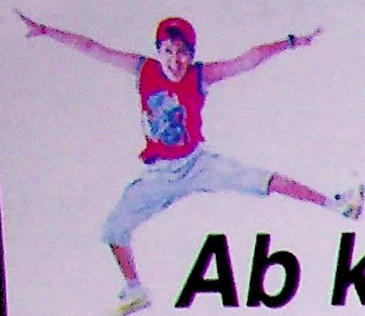
संस्थापक :

पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

राष्ट्रधर्म तो कल्पवृक्ष है, संघ–शक्ति ध्रुवतारा है।
बने जगद्गुरु भारत फिर से, यह सङ्कल्प हमारा है।।

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ–२२६००४

editor_rdm_1947@rediffmail.com
mgr.rdm.1947@gmail.com
दूरभाष : (०५२२) ४०४१४६४ (सम्पादकीय)
दूरभाष : (०५२२) २६६१३८४ (व्यवस्था)

❖

वर्ष – ६८, अङ्क – १०
आषाढ़ (शुद्ध / अधिक)– २०७२
(युगाब्द–५११७)
जून २०१५

❖

मूल्य : ₹ २०.००
वार्षिक : ₹ २००.००
आजीवन (२० वर्ष) : ₹ २५००.००
विदेश के लिए वार्षिकः ५० डॉलर

❖

सम्पादक :
आनन्द मिश्र 'अभय'

प्रभारी निदेशक :
आनन्दमोहन चौधरी

प्रबन्धक :
पवनपुत्र बादल

❖

प्रस्तुति

कविता

मुखपृष्ठ व अंक सज्जा : अभिषेक शुक्ल

हिन्दुस्थान यहाँ रहनेवाले सब का नहीं

डॉक्टर जी का यह दृढ़ विचार था कि हिन्दुस्थान में हिन्दू समाज की हर बात, हर संस्था तथा आन्दोलन राष्ट्रीय है तथा वही सही अर्थों में पूरी–पूरी राष्ट्रीय हो सकती है। परस्पर विरोधी परम्परा, संस्कृति तथा भावना वाले लोगों की खींचतान कर बाँधी हुई गठरी राष्ट्र नहीं होती; बल्कि धर्म, संस्कृति, देश, भाषा तथा इतिहास के साधर्म्य से 'हम सब एक हैं' यह ज्ञान तथा 'एक रहेंगे' इसका निश्चय होकर जो अपूर्व आत्मीयता तथा तन्मयता ह्रदय से उत्पन्न होती है, वही राष्ट्र का अधिष्ठान है, इस सत्य को वे अच्छी तरह से जानते थे। परायों ने हिन्दुओं के आत्मविश्वास पर आघात करने के लिए संघ को साम्प्रदायिक, राष्ट्रविरोधी तथा संकुचित कहा, तो इसमें आश्चर्य करने लायक कोई बात नहीं। कारण, हिन्दू समाज के स्वत्व–जागरण का अर्थ है उनका मरण। इसलिए हिन्दू समाज के मन में आत्मीयता की अर्थात् राष्ट्रीयता की जागृति न होने पाये, इस उद्देश्य को सम्मुख रख 'हिन्दुस्थान यहाँ रहनेवाले सबका है' इस प्रकार का स्वार्थी प्रचार उन्होंने जोर से शुरू कर रखा था। यह प्रचार इतना सफल हुआ था कि आँखों देखते हिन्दू समाज की परकीयों द्वारा योजनाबद्ध रूप से चारों ओर से मारपीट होते हुए भी उसका प्रतिकार करने के लिए संगठित होना संकुचित लगने लगा तथा उलटे आक्रमणकारियों का आलिंगन करने की आत्मघात की वृत्ति दुर्दैव से श्रेयस्कर और सही समझी जाने लगी। डॉक्टर जी को समाज का यह दयनीय दृश्य स्पष्ट दिखता था। अतः लोगों की तात्कालिक निन्दा–स्तुति की चिन्ता न करते हुए जो सत्य था, इतिहास–सम्मत था, राष्ट्र के लिए हितकर था; परन्तु करने में कठिन था, वही संघ–कार्य उन्होंने निर्भयता से प्रारम्भ किया।

सम्पादक की कलम से

वर्ष १९५२। स्वतन्त्र भारत के नव–सृजित संविधान के अन्तर्गत पहला सामान्य–निर्वाचन घोषित। तब लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ होते थे। चुनाव के अखाड़े में अ.भा. कांग्रेस का चुनाव चिह्न 'दो बैलों की जोड़ी'; कम्यूनिस्ट पार्टी का हँसिया–बाली; हिन्दू महासभा का घुड़सवार, सोशलिस्ट पार्टी का बरगद और नवनिर्मित राजनीतिक दल भारतीय जनसंघ का दीपक था। प्रथम निर्वाचन आयुक्त सुकुमार सेन द्वारा निर्वाचन सम्पन्न कराने की प्रक्रिया का निर्धारण उनकी विलक्षण प्रशासनिक क्षमता और बुद्धि–कौशल का परिपुष्ट प्रमाण था। चुनाव प्रचार का श्रीगणेश, विभिन्न दलों की प्रचार सभाओं की धूम शुरू हो चुकी थी। ऐसी ही एक छोटी–सी चुनाव सभा–स्थान नुमाइश चौराहा, हरदोई (उ.प्र.)। हरदोई की नुमाइश अपने यौवन पर थी। चौराहे पर पहुँचते ही तीर्थ, घाट, पण्डा, झण्डा के एक काव्यात्मक गद्य रूपक की ओजमयी शब्दावली कानों में पड़ती है, तो सहज ही पैर उस ओर मुड़ जाते हैं। ज्ञात होता है कि जनसंघ के अटल बिहारी वाजपेयी बोल रहे हैं। श्रोता तो मुश्किल से डेढ़–दो सौ ही होंगे; पर वे बड़ी तन्मयता से भाषण सुन रहे थे। नुमाइश के उस शोर–शराबे में भी सभा–स्थल पर अंग्रेजी में कहें तो 'पिन ड्राप साइलेन्स'। यह था जनसंघ के उस नवोदित नेता अटल बिहारी वाजपेयी की वाणी का जादू। रुक्मांगद क्षत्रिय इण्टर कालेज के हम इण्टर के विद्यार्थियों की एक पहचान यह भी बन गयी थी कि इनमें अधिकतर संघ के स्वयंसेवक और सामान्य वार्त्तालाप में भी संस्कृतनिष्ठ प्राञ्जल हिन्दी बोलते हैं। अटल जी का नाम तो उनकी कविता 'हिन्दू तन मन, हिन्दू जीवन...' से प्रसिद्ध हो ही चला था; पर उन्हें प्रत्यक्ष देखने और सुनने का यह प्रथम अवसर था। उस सन्ध्या को नुमाइश जाने के लोभ का यह लाभ ऐसा था कि भाषण सुनने के बाद और कुछ देखने–सुनने का मन ही नहीं रहा और वापस आवास पर आ जाने के बाद भी देर रात तक झण्डा, पण्डा घाट का वह रूपक ही दिमाग में गूँजता रहा।

वरं राष्ट्रहितं ध्येयं (२)

अटल जी जब १९५५ के लोक सभा उप चुनाव में लखनऊ से खड़े हुए, तो उनके सामने श्रीमती शिवराजवती नेहरू (पण्डित नेहरू की चचेरी भाभी व आनन्द नारायण मुल्ला (कश्मीरी में मल्ला) की बहन और त्रिलोकी सिंह थे। लखनऊ से उनका जो लगाव राष्ट्रधर्म–सम्पादन–काल से था, वह इस उपचुनाव में बहुत काम आया; पर विजय प्राप्त न हो सकी। इसके बाद अटल जी की सभाओं का सिलसिला जारी रहा। उनकी भाषण–शैली में दिनानुदिन ऐसा निखार आता गया कि लखनऊ में झण्डेवाला पार्क अमीनाबाद में जब भी उनकी सभा की घोषणा होती, तो लोग १५–१५ मील से साइकिलों से उन्हें सुनने आते थे। पार्क की चारों ओर की सड़कें और भवनों की छतें व छज्जे तक भर जाते थे। १९६० में जब जनसंघ का अधिवेशन लखनऊ के उसी झण्डेवाले पार्क में हुआ, तो अधिवेशन के दूसरे दिन कांग्रेसी भोंपू बन चुके 'नेशनल हेराल्ड' और 'नवजीवन' में एक बड़ी ओछी टिप्पणी छपी। अटल जी का भाषण भी उसी दिन सवेरे लगभग ६ बजे जब शुरू हुआ, तो उसका पहला वाक्य ही था– 'हमने उनके स्वागत के लिए भव्य सिंहद्वार बनाये थे; पर जिन्हें 'गटर का रास्ता' ही पसन्द हो, तो कोई क्या कर सकता है। कांग्रेस और उसके अन्ध समर्थक इन अखबारों की फिर हिम्मत न पड़ी कि कोई ऐसी–वैसी टिप्पणी करते।

बाद में अटल जी की सभाओं के लिए झण्डेवाला पार्क छोटा पड़ने लगा, तो बेगम हजरत महल पार्क में भी सभाएँ आयोजित की जाने लगीं। ऐसी एक सभा में राजनीतिक छूतछात के पुरोधाओं पर उन्होंने चुटकी ली थी– आपने एक कहावत सुनी होगी, आठ कनौजिया, नौ चूल्हे। नवाँ चूल्हा इसलिए कि उससे आग लेकर बाकी अपने–अपने अलग–अलग आठ चूल्हे जलाते थे। फिर बोले, मैं भी कनौजिया ब्राह्मण हूँ, और जोरदार ठहाका। सभा में भी ठहाके लगने ही थे। कभी 'कंगाली में आटा गीला' मुहावरे के बहाने एक अन्य मुहावरे का प्रयोग कर गरीबी में अपनी इज्जत बचाने का नुस्खा बताते– एक गृहस्थ ने तीन ब्राह्मणों को अपने यहाँ भोजन करने का न्योता दिया। बुलाये तो सिर्फ तीन थे; पर वे अपना तेरह का कुनबा लेकर आ धमके। अब अन्दर सन्देश कैसे दें कि इज्जत बचे। गृहस्थ ने बाहर से ही हाँक लगायी– 'तीन बुलाये, तेरह आये, दे दाल में पानी।' सुनते ही मैदान तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा।

बात एक चुनावी सभा की। बेगम हजरत महल लखनऊ में बोलते–बोलते अटल जी ने 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता' मुहावरे को उद्धृत करते हुए कहा, 'ठीक है, अकेला चना भाड़ भले ही न फोड़ सकता हो; लेकिन भड़भूँजे की

आँख तो फोड़ सकता है।' और भीड़ के ठहाकों की गूँज दूर तक गूँज उठी।

अटल जी १९७७ में मोरार जी देसाई की जनता पार्टी सरकार में विदेश मन्त्री बनाये गये। विदेश मन्त्री के रूप में जब वे चीन के प्रवास पर थे, चीन ने वियतनाम पर अकस्मात् आक्रमण कर दिया। अपने इस मित्र देश पर चीन का यह अप्रत्याशित आक्रमण भारत के इस विदेश मन्त्री को भला कैसे सहन होता ! वह भारत पर १९६२ में चीन का ऐसा ही आक्रमण देख चुका था। तत्काल अपना विरोध प्रकट कर प्रवास रद्द करके भारत वापस। चीन सन्न रह गया। इससे उत्साहित वियतनाम ने भी आक्रमण का मुँहतोड़ जवाब दिया। परिणामतः चीन को अपने पैर तत्काल पीछे हटाने पड़े। भारत के किसी विदेश मन्त्री द्वारा ऐसे तीव्र विरोध की रञ्चमात्र भी आशंका चीन को नहीं थी। वह तो नेहरू जी की विदेश नीति ही समझे बैठा था। उसे क्या पता था कि इस बार 'सकल विश्व को अटल चुनौती' देनेवाला अटल विदेश मन्त्री है।

ऐसे प्रसंगों की श्रृंखला बड़ी लम्बी है। बस कुछ प्रसंग और–

वर्ष १९७०–७१। पाकिस्तानी सेना के 'बिलोचिस्तान का कसाई' पदवीधारी जनरल टिक्का खाँ ने तब के पूर्वी पाकिस्तान में ऐसा 'कत्ले–आम' मचा रखा था कि पूछो मत। चुनाव में बहुमत प्राप्त अवामी लीग के नेता शेख मुजीबुर्रहमान को प्रधानमन्त्री बनाने के बजाय जेल में डाल दिया जाता है। जनरल यहिया खाँ पाकिस्तान का सर्वेसर्वा। जनरल नियाजी को पूर्वी पाकिस्तानवासियों को सबक सिखाने के लिए भेजा जाता है। अमेरिका का राष्ट्रपति निक्सन आँख मूँदकर पाकिस्तान के साथ। ऐसे में इन्दिरा जी ने रूस से २० वर्षीय रक्षा समझौता कर अमेरिका की काट सुनिश्चित की। लोकसभा में बहस जारी थी। किसी ने अमेरिका के अन्ध–समर्थन को पाकिस्तान का 'इक्का का दाँव' क्या कहा कि अटल जी बोल उठे; लेकिन हमारी 'बेगम' ने 'इक्के' को काट दिया; 'बेगम' 'तुरुप' की थी। सारा सदन ठहाकों से गुञ्जायमान हो उठा। बांग्लादेश युद्ध में भारत की विजय पर अटल जी ने इन्दिरा गान्धी के साहस को बधाई दी। 'वयं पञ्चाधिकं शतम्' का उदाहरण देकर कहा, इस समय हम एक हैं, हमारी एकमात्र नेता इन्दिरा जी हैं। सदन में हर्ष की लहर दौड़ गयी। बांग्लादेश–विजय के पश्चात् कांग्रेस में देवकान्त बरुआ जैसे चाटुकारों की जमात बढ़ गयी थी। एक नेता ने कहा, अटल जी आदमी तो बहुत सही हैं; पर गलत पार्टी में हैं। अटल ने जब सुना, तो जवाब था, यदि पार्टी गलत होती, तो अटल वहाँ होता ही नहीं। एक और कांग्रेसी चापलूस ने अटल जी को कांग्रेस में आने का न्योता ही नहीं दिया, उन्हें मन्त्री बनाने तक की बात कह डाली। अटल जी ने सुना। लखनऊ में बेगम हजरत महल पार्क की विशाल सभा में उनकी गर्जना सुननेवाली थी– हुँकारते हुए कहा, 'अभी दुनिया में कोई ऐसा माई का लाल पैदा नहीं हुआ है, जो अटल को खरीद सके।' सभा अटल जी के जयकारों से गूँज उठी।

१९८० में भारतीय जनता पार्टी की स्थापना हुई। 'दोहरी सदस्यता' के नाम पर सोशलिस्टों ने जनता पार्टी का अन्तर्ध्वंस करने–कराने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी थी। अटल जी अध्यक्ष बनाये गये। उसके बाद हुए लोकसभा के दो उपचुनावों में भाजपा जीती, तो कार्यकर्त्ताओं का उत्साह व आत्म–विश्वास बढ़ना स्वाभाविक था; परन्तु १९८४ में इन्दिरा जी के बाद जो लोकसभा चुनाव हुए, उनमें भाजपा के मात्र दो सदस्य चुनकर आ पाये। उसके उ.प्र., म.प्र., दिल्ली, राजस्थान जैसे सारे गढ़ ढह गये। ऐसे में पत्रकार भला कब चूकनेवाले थे। अटल जी से पूछ बैठे, पार्टी के मात्र दो सदस्य जीत सके, आप तक हार गये। ऐसा क्या हुआ ! सुनते ही अटल जी बोले– भाई ! हम तो सरकार की नीति का पालन कर रहे हैं– 'हम दो हमारे दो' और जोर का ठहाका लगाया। पत्रकार बेचारा क्या करता। उसे भी उस ठहाके में साथ देना ही था।

ऐसा ही एक अन्य प्रकरण। अटल जी ने अमीनाबाद झण्डेवाला पार्क से डॉ. मुरली मनोहर जोशी और आडवाणी जी को कारसेवा हेतु अयोध्या के लिए, लखनऊ से सांसद होने के नाते विदा किया था। अपने विदाई भाषण में अटल जी कारसेवा कैसे की जा सकती, ऐसे भी की जा सकती है, वैसे भी की जा सकती है आदि बोले थे। अब अटल जी के शब्दों की भाषा कोई सहज ही समझ ले, सम्भव नहीं। बड़े–बड़े धुरन्धर गुन्ताड़े लगाते रह जाते हैं। और फिर अगले ही दिन ६ दिसम्बर को अयोध्या में जो कारसेवा होती है, वह विश्वविदित है। बाद में किसी पत्रकार ने अटल जी से पूछा– आपने जोशी जी व आडवाणी जी को जब अयोध्या के लिए विदा किया था, तो आपको वहाँ के बारे में कुछ तो आभास होगा। अटल जी का जवाब बड़ा मजेदार था, 'भाई ! जब आडवाणी जी और जोशी जी साथ–साथ कारसेवा करने जायेंगे, तो कुछ तो गुल खिलना ही था' और जोरदार ठहाका। सब कुछ कह दिया और कुछ भी नहीं कहा। वक्ता नहीं, वाग्मी अटल जी; अद्भुत वाक्–सिद्धि। □

– आनन्द मिश्र 'अभय'
E-mail : editor_rdm_1947@rediffmail.com

– बजरंगशरण तिवारी

लो अमर हुआ मैं विष पीकर...

(विद्वान् लेखक 'राष्ट्रधर्म' के शुभारम्भ से ही अटल जी से जुड़े रहे। उनका यह संस्मरणात्मक लेख 'राष्ट्रधर्म' में पुनः प्रकाशित करना उनके ऐतिहासिक योगदान को उद्घाटित करने के निमित्त से है। उनके पास ऐसी स्मृतियों का भाण्डार था, जो कुछ समय पूर्व उनका निधन हो जाने से उनके साथ ही चला गया।) -- सम्पादक

१३ जनवरी, १९७६ को मारीशस में विश्व हिन्दी सम्मेलन सम्पन्न हुआ था। उसमें तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई सहित सारे विश्व के हिन्दी–प्रेमी उपस्थित थे। वहाँ भी डॉ. कर्णसिंह ने श्री अटल जी द्वारा सं. रा. संघ में हिन्दी में भाषण करने का विशेष उल्लेख किया। उसी सम्मेलन में श्री अटल जी ने भाषण करते हुए कहा–

"संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिन्दी के भाषण का भी उल्लेख हुआ है; मगर उस भाषण के साथ एक भ्रम पैदा किया गया कि एक भाषण के ऊपर करोड़ों रु. खर्च कर दिये गये हैं। मैं कई बार इसका खण्डन कर चुका हूँ, करोड़ नहीं, लाख नहीं, हजार नहीं, एक रु. तक खर्च नहीं हुआ है। मोरारजी भाई ने ठीक कहा है कि अगर भारत में हिन्दी चलेगी, तो राष्ट्रसंघ में सहज रूप में आ जायेगी।

'पय पीकर सब मरते आये, लो अमर हुआ मैं विष पीकर।' अपनी 'परिचय' नामक प्रसिद्ध कविता की इसी पंक्ति में छिपा है अटल जी का जीवन–दर्शन। हाल ही में अपने पुरानी साथी कामरेड शफीक अहमद नकवी से मिला। वे यहाँ आ.इं.स्टू. फेडरेशन के जलसे में लखनऊ पधारे थे। श्री नकवी प्रतिबन्धित कम्युनिस्ट पार्टी के सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे हैं (द्वितीय महायुद्ध के पहले) और पार्टी के नीति–निर्धारकों में रहे हैं। बाद में कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहकर सेवा–निवृत्त होकर आजकल दिल्ली में पार्टी कार्यालय पर रहते हैं।

अनेक वर्षों बाद भेंट हुई थी। बातचीत के दौरान स्पष्ट हो गया कि उनकी और मेरी राहें अलग–अलग हो गयी हैं। फिर भी वही पुराना अपनापन। यह जानते ही कि मेरा मार्ग संघ (रा.स्व. संघ) का हो गया है, उन्होंने छूटते ही जो पहली बात कही, वह यह कि भाई, आपके अटल बिहारी वाजपेयी का तो आपकी पार्टी में बड़ा विरोध है, मुझे अपने पुराने साथियों से मालूम हुआ कि अटल जी पहले कम्युनिस्ट पार्टी से सम्बद्ध रहे (आगरा में)। वह यह जताना चाह रहे थे कि अटल जी की शैली और प्रगतिशीलता पर हमारी (पार्टी की) छाप है। इस प्रकार उन्होंने उनके लिए साफ्ट कार्नर (नरम कोना) जताया। मैंने अपने ढंग से बात साफ की। पार्टी में उनका विरोध जैसी अनेक बातें आज के 'गंगा गये गंगादास, जमुना गये जमुनादास' जैसे लोगों द्वारा उछाली जाती हैं। यही नहीं, बड़े–बड़े पत्रों के स्तम्भकार जैसे लोग भी उनके बारे में भ्रान्तियाँ फैलाने में नहीं चूकते। भाजपा में श्री लालकृष्ण आडवाणी के अध्यक्ष चुने जाने के बाद श्री अटल जी की तूफानी सक्रियता और कार्यक्रमों के पश्चात् उक्त धारणाएँ ध्वस्त हो गयीं और स्मरण रहे, सन् '७३ में भी उन्होंने स्वेच्छा से अध्यक्ष पद त्यागा था।

उ.प्र. कांग्रेस सरकार के मुख्यमन्त्री पं. गोविन्दवल्लभ पन्त के संसदीय सचिव श्री गोविन्द सहाय ने १९४८ में संघ पर प्रतिबन्ध लगते ही एक पुस्तक लिखी थी 'नाजी टेक्नीक और आर.एस.एस.' उसमें लिखा था कि डॉ. हेडगेवार जर्मनी जाकर हिटलर से मिले थे और उससे प्रेरणा ली; पर इससे बढ़कर झूठ और क्या हो सकता है ? उनकी बड़ी थू–थू हुई। 'चाँद' के भूतपूर्व सम्पादक श्री रामरिख सहगल ने इलाहाबाद से प्रकाशित अपने अंग्रेजी पत्र 'क्राइसिस' में इसका बड़ा मुँहतोड़ उत्तर दिया था। उस समय (संघ के प्रतिबन्ध काल में) श्री अटल जी 'क्राइसिस' में ही थे। श्री सहगल, जिन्होंने बड़ों–बड़ों को घास नहीं डाली, बहुत चाहते थे कि अटल जी उनके साथ ही पत्रकारिता में बने रहें।

वास्तव में संघ और डॉ. हेडगेवार के जीवन–दर्शन व कार्य को ईमानदारी से समझे विना उस 'आग' की भट्ठी से निकले 'सिपाही' का सही मूल्यांकन कोई कर ही नहीं सकता। समालोचक, लेखक और इतिहासकार चाहे किसी पन्थ का हो, उसे ईमानदारी से ही कलम उठानी चाहिए। एक उदाहरण अप्रासंगिक न होगा। उ.प्र. कांग्रेस सरकार के मुख्यमन्त्री पं. गोविन्दवल्लभ पन्त के संसदीय सचिव श्री गोविन्द सहाय ने १९४८ में संघ पर प्रतिबन्ध लगते ही एक पुस्तक लिखी थी 'नाजी टेक्नीक और आर.एस.एस.' उसमें लिखा था कि डॉ. हेडगेवार जर्मनी जाकर हिटलर से मिले थे और उससे प्रेरणा ली; पर इससे बढ़कर झूठ और क्या हो सकता है ? उनकी बड़ी थू–थू हुई। 'चाँद' के भूतपूर्व सम्पादक श्री रामरिख सहगल ने इलाहाबाद से प्रकाशित अपने अंग्रेजी पत्र 'क्राइसिस' में इसका बड़ा मुँहतोड़ उत्तर दिया था। उस समय (संघ के प्रतिबन्ध काल में) श्री अटल जी 'क्राइसिस' में ही थे। श्री सहगल, जिन्होंने बड़ों–बड़ों को घास नहीं डाली, बहुत चाहते थे कि अटल जी उनके साथ ही पत्रकारिता में बने रहें।

युवा तुर्क नेता और सम्भवतः अटल जी के खानदानी श्री शशिभूषण वाजपेयी दिल्ली लोकसभा चुनाव में सन् १९७७ में श्री अटल जी से पराजित हो चुके थे, पहले वे लखनऊ में श्री गोविन्द सहाय के पास रहते थे। वस्तुतः वह राजनीति में श्री सहाय के शागिर्द थे। वे प्रायः अटल जी के पास आया करते थे। उस समय लखनऊ में अटल जी की शोहरत ऐसी फैली थी कि गोविन्द सहाय ने शशिभूषण को माध्यम बनाकर अटल जी को खींचना चाहा; पर उन्हें क्या मालूम था कि यह मिट्टी कुछ और ही है। अटल जी का भाषण था अमीनाबाद के झण्डेवाला पार्क में। श्री गोविन्द सहाय शशिभूषण के साथ उनका भाषण सुनने गये, एक गली के नुक्कड़ से उनका भाषण सुना। बस लट्टू हो गये और डोरे डाले; लेकिन अटल जी उनके हाथ न लगे।

यह तो मात्र शुरुआत थी श्री अटल जी के सार्वजनिक जीवन की। श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित के इस्तीफे से लखनऊ की लोकसभा सीट खाली हुई। जनसंघ ने खड़ा किया श्री अटल जी को। मुहल्ले–मुहल्ले की पदयात्रा पर थे, माडल हाउसेज में उनकी भिड़ंत हुई प्रोफेसर लुम्बा से, जो लखनऊ विश्वविद्यालय में राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर थे। वे आज के 'केशव भवन' (प्रान्तीय कार्यालय, रा.स्व. संघ) में रहते थे। पहले यह भवन यूनिवर्सिटी का डेलीगेसी सेण्टर था। वे 'सेल्फ डिटरमिनेशन' (आत्मनिर्णय) को मानने वाले थे; किन्तु अटल जी से तुर्की–ब–तुर्की जवाब पाकर उनकी तबियत हरी हो गयी।

'पद' उन्हें सदैव काँटों का ताज ही महसूस हुआ है; पर विधि का विधान ऐसा है कि पद सदैव उनके पीछे भागता रहा है और जबरदस्ती चस्पां होता रहा है 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' की तरह।

वह गौरव और यह भ्रम

श्री अटल जी आज के तमाम शीर्षस्थ नेताओं की तरह व्यक्तिवादी 'गद्दी चिपकू' नेता नहीं। सोच भी ऐसा नहीं कि मेरी ही स्टिक से गोल हो। जब वे विदेश मन्त्री थे, तब एक दिन जैसे ही अखबार की सुर्खियों में आया कि देश के विदेशी मन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में अपना भाषण हिन्दी में दिया है, तो सारे देश में लोग सुखद आनन्द से रोमाञ्चित हो उठे। उसी काल में १३ जनवरी, १९७६ को मारीशस में विश्व हिन्दी सम्मेलन सम्पन्न हुआ था। उसमें तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई सहित सारे विश्व के हिन्दी–प्रेमी उपस्थित थे। वहाँ भी डॉ. कर्णसिंह ने श्री अटल जी द्वारा सं. रा. संघ में हिन्दी में भाषण करने का विशेष उल्लेख किया। उसी सम्मेलन में श्री अटल जी ने भाषण करते हुए कहा–

"संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिन्दी के भाषण का भी उल्लेख हुआ है; मगर उस भाषण के साथ एक भ्रम पैदा किया गया कि एक भाषण के ऊपर करोड़ों रु. खर्च कर दिये गये हैं। मैं कई बार इसका खण्डन कर चुका हूँ, करोड़ नहीं, लाख नहीं, हजार नहीं, एक रु. तक खर्च नहीं हुआ है। मोरारजी भाई

"श्री अटल बिहारी वाजपेयी हमारे प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेताओं में से हैं।... वे अपने भाषण तथा व्यवहार में भी प्रामाणिक तथा सोद्देश्य रहते हैं। स्वाभाविक रूप से सदन के बाहर और अन्दर ध्यानपूर्वक सुने जाते हैं। उनकी भाषा हृदयग्राही होने के साथ-साथ सरल भी है। भारत की पुरानी परम्पराओं में पले वे 'साधारण जीवन एवं उच्च चिन्तन' का प्रत्यक्ष रूप हैं।... कभी-कभी जब वे आवेश में आते हैं, तो वह आवेश भी इसी देशभक्ति के फलस्वरूप होता है।"

ने ठीक कहा है कि अगर भारत में हिन्दी चलेगी, तो राष्ट्रसंघ में सहज रूप में आ जायेगी। यह ठीक है कि कुछ प्रयत्न करना पड़ेगा।

केवल मैं ही नहीं

मैं आपको बताना चाहूँगा कि मुझसे पहले हमारे इण्डियन फोरन सर्विसेज के अफसर थे श्री शाह हाशमी, जिन्होंने यूनाइटेड नेशन्स में सबसे पहले हिन्दी में भाषण दिया। यह ठीक है कि वह भाषण भारत में राजनीतिक परिवर्त्तन के पश्चात् ही हुआ है। अभी इस अधिवेशन में भी श्री गौरीशंकर राय इस कमेटी के सदस्य थे, उन्होंने कमेटी में हिन्दी में भाषण किया। अनुवाद का प्रबन्ध हो सकता है, मगर विदेशियों को पता लगना चाहिए कि भारत की अपनी भाषा है।'

देखा आपने ! स्वयं श्रेय लेने की अपेक्षा वे अपने साथियों को श्रेय पहले देते हैं। यह राज है उनके बड़े बनने का। कोई बुग्ज नहीं रखते; बल्कि उन्हें आदर और सम्मान देते हैं।

एक बार बड़े नेता-परिवार की एक महिला अटल जी से मिली और उस परिवार के बारे में बहुत सी बातें बतायीं। उनका मतलब था कि अटल जी उसका प्रयोग राजनीति में करें। अटल जी ने बड़ी बेचैनी से सब बातें सुनीं और कहा, यह व्यक्तिगत कीचड़-उछाल मेरे मिजाज में नहीं।

भारतीय गरिमा

बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री अटल जी का व्यक्तित्व गरिमामय और भारतीयता से ओतप्रोत है। श्री जी. एस. ढिल्लो जी लोकसभा अध्यक्ष रहे हैं, उन्होंने भारतीय शिष्ट मण्डल की विदेश-यात्रा के दौरान अटल जी के प्रति निम्नलिखित उद्‌गार प्रकट किये थे-
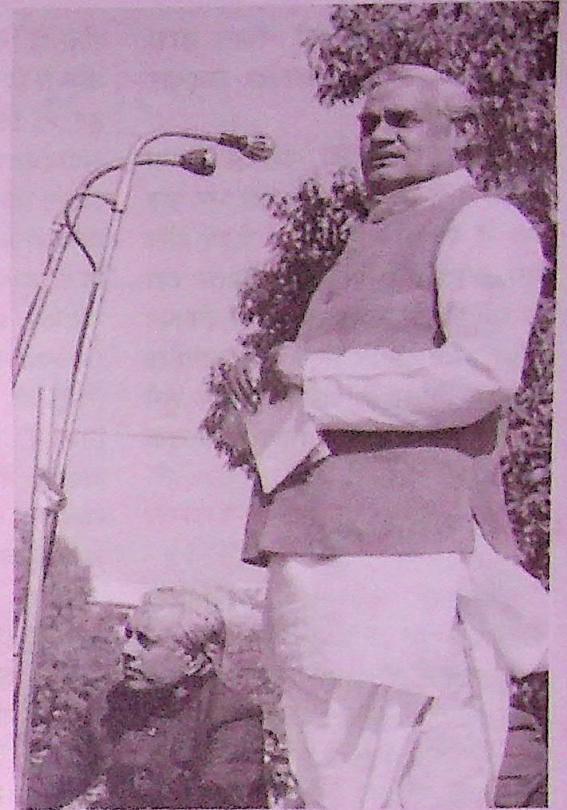
"श्री अटल बिहारी वाजपेयी हमारे प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेताओं में से हैं।... वे अपने भाषण तथा व्यवहार में भी प्रामाणिक तथा सोद्देश्य रहते हैं। स्वाभाविक रूप से सदन के बाहर और अन्दर ध्यानपूर्वक सुने जाते हैं। उनकी भाषा हृदयग्राही होने के साथ-साथ सरल भी है। भारत की पुरानी परम्पराओं में पले वे 'साधारण जीवन एवं उच्च चिन्तन' का प्रत्यक्ष रूप हैं।... कभी-कभी जब वे आवेश में आते हैं, तो वह आवेश भी इसी देशभक्ति के फलस्वरूप होता है।"

दिग्गजों में

इलाहाबाद विश्वविद्यालय छात्र संघ के विधान में 'आजीवन सम्मानित सदस्य' चुने जाने का विधान है; परन्तु चुनाव सर्व-सम्मति से होना चाहिए। यह गौरव प्राप्त करनेवालों में पं. मदन मोहन मालवीय, महात्मा गान्धी, पं. मोतीलाल नेहरू, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, पं. जवाहरलाल नेहरू, आचार्य कृपलानी, श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित सरीखे दिग्गज शामिल हैं। किन्तु आजादी के बाद किसी नेता का सर्वसम्मत चुनाव न हो सका। १९५९-६० में जब श्री मदनलाल खुराना छात्र संघ के मन्त्री चुने गये, तब आजीवन सदस्य के लिए श्री अटल जी का नाम आया और वे सर्वसम्मति से चुन लिये गये। इसके उपलक्ष्य में विश्वविद्यालय में जो समारोह हुआ, उसमें श्री अटल जी का एक घण्टे तक धारा प्रवाह भाषण

हुआ। उपकुलपति डॉ. रंजन द्वारा अटल जी के प्रति व्यक्त उद्गार उल्लेखनीय हैं–

"भाषण क्या हुआ, यह तो मैं क्या बताऊँ ? मैं तो पूरे एक घंटा भर जब तक ये बोलते रहे, इनके चेहरे और हाव–भाव की ओर ही देखता रहा कि इनके मुख से सरस्वती कैसे निकल रही हैं। मैंने जीवन भर अनेक कान्फ्रेंसों में भाग लिया है, अनेक भाषण सुने हैं; पर ऐसा प्रभावी भाषण आज तक कभी नहीं सुना।"

पहले संवाददाता बनाया होता !

दिसम्बर, १९४७ में वे 'राष्ट्रधर्म' के सम्पादक थे। उस समय लखनऊ में 'मुसलमानाने हिन्द कान्फ्रेन्स' होनेवाली थी। मौलाना अबुल कलाम आजाद उसे प्रिसाइड करनेवाले थे। उत्तर प्रदेश की सारी सरकार उसके इन्तजाम में परोक्ष रूप से जुटी थी; असली इन्तजाम कम्युनिस्टों के हाथ था। उसके पास देने में बड़ी सावधानी बरती जा रही थी। अटल जी ने कहा– बजरंग जी ! इसका पास किसी प्रकार लाइये।' मैं गया, तो मेरे पुराने मित्र कामरेड सलाउद्दीन उस्मान (आजकल 'डेक्कन हेराल्ड' के प्रतिनिधि) मिले, वही पास दे रहे थे। मैंने उनसे 'राष्ट्रधर्म' के लिए पास माँगा; तो वे बोले भाई, यह तो मासिक है। मैंने कहा, इसका साप्ताहिक शीघ्र ही निकलने वाला है, उसके पहले अंक में ही इसे कवर करेंगे। यह जानते हुए भी कि अब मैं संघ में हूँ, उन्होंने संवाददाता पास दे दिया। जब उसे अटल जी को दिया, तब उन्होंने बड़ी टीस से कहा– दीनदयाल जी ने बना दिया सम्पादक वरना...। अटल जी ने उसको इस ढंग से कवर किया ('पाञ्चजन्य' में) कि आयोजक अनकवर (नंगे) हो गये। जब दैनिक 'स्वदेश' निकला, तब भी उन्होंने कहा था– वास्तव में दीनदयाल जी को मुझे सम्पादक न बनाकर, संवाददाता बनाना चाहिए था। कई वर्षों पूर्व उन्होंने 'नवनीत' में एक लेख लिखा था 'राजनीति की रपटीली राहें', उसमें भी उन्होंने यह विचार व्यक्त किया था कि यह मेरी सबसे बड़ी भूल है कि मैं राजनीति में आया। कुछ साहित्यिक सेवा करता– पठन–पाठन की कुल–रीति को आगे बढ़ाता...।

कविता बनाम राजनीति

सीतापुर के एक वयोवृद्ध स्वतन्त्रता सेनानी और सिद्ध कवि थे 'कवि केहरि कृपाण।' उन्होंने एक लघु काव्य लिखा था, 'हिन्दुत्व' और लखनऊ आकर अटल जी से आग्रह किया कि आप मेरी इस कृति की भूमिका लिख दें। अटल जी ने उनसे निवेदन किया कि मैं ऐसा बड़ा आदमी नहीं, न बड़ा कवि, जो आपकी पुस्तक की भूमिका लिखूँ। पर वे माने नहीं और अटल जी लिखने को राजी नहीं। जब 'कृपाण' जी ने कहा कि फिर यह पुस्तक छपेगी नहीं, तब अटल जी भूमिका लिखने को राजी हुए। उसका प्रथम 'पैरा' यथावत् निम्न है–

'जिसकी कविता किशोरावस्था में ही राजनीति के दुर्वह भार के नीचे दबकर सदा के लिए सो गयी है और जिसकी लेखनी भारती के भण्डार को मौलिक ग्रन्थ–रत्नों से भरने के बजाय दलीय प्रचार का हथियार मात्र बनकर ही रह गयी है, उस साधारण व्यक्ति को, अर्थात् मुझे 'कवि केहरि कृपाण' जी ने अपनी इस काव्य–पुस्तिका की भूमिका लिखने के लिए क्यों चुना, यह प्रश्न पहेली बनकर मेरे सम्मुख खड़ा है और मैं उत्तर खोजने में असमर्थ हूँ।'

ऐसे हैं संकोची प्रकृति के अटल जी।

फुरसत मिले, तब तो...

एक मित्र के यह पूछने पर कि अटल जी आप लिखते क्यों नहीं, उन्होंने अपने अल्हड़ अन्दाज में जवाब दिया– **'अरे यार ! कविता तो भाषण में बह गयी। जो कुछ लिखना चाहता हूँ, वह सब भाषणों में निकल जाता है। भाषणबाजी से फुरसत मिले, तो सरस्वती की साधना करूँ। कभी–कभी मन करता है कि राजनीति के मञ्च से चुपचाप खिसक जाऊँ।'**

१९५२ में 'स्वदेश' को 'अलविदा' (अन्तिम सम्पादकीय) कहकर वे चले गये दिल्ली 'वीर अर्जुन' को सँभालने। फिर आगे ही आगे बढ़ते गये– अपना यह जीवन संगीत गुनगुनाते–

यह बुझने वाली आग नहीं,
रग–रग में इसे सजाये हूँ।
यदि कभी अचानक फूट पड़े
विप्लव लेकर तो क्या विस्मय !

□

संसद : समाज का दर्पण

"संसद को समाज का दर्पण होना चाहिए; लेकिन अगर संसद से तथ्य छिपाये जायेंगे, अगर उन्मुक्त वाद–विवाद के लिए वातावरण नहीं होगा, अगर संख्या के बल पर बात गले के नीचे उतरवाने की कोशिश की जायेगी, तो संसद राष्ट्र के हृदय का एक स्पन्दन नहीं रहेगी। अन्य संस्थाओं की तरह ही एक संस्था मात्र रह जायेगी, वह कानूनों पर मुहर लगायेगी, मगर देश में न ही कोई बुनियादी परिवर्तन ला सकेगी और न तो देश को अराजकता की ओर जाने से रोक सकेगी।"

– अटल बिहारी वाजपेयी

– शिवकुमार पारीख

...तो उनकी कविताओं का मर्म समझें

अटल जी का धीर–गम्भीर चिन्तनशील व्यक्तित्व है। १९८० में भाजपा के गठन के बाद मुम्बई में दिया उनका भाषण किसको याद नहीं होगा ? उन्होंने तब कविता लिखी थी– 'आओ फिर से दिया जलायें...।' कार्यकर्त्ताओं में नया जोश भरा था।

याद कीजिये सन् '६० का वह दशक, जब भारतीय राजनीति के ओजस्वी–तेजस्वी नेता अटल बिहारी वाजपेयी के प्रति राजनीतिक–सामाजिक क्षेत्रों में गजब का आकर्षण था, लोग उनके चुम्बकीय व्यक्तित्व से खिंचे चले आते थे, उनके भाषण सुनने को लालायित रहते थे। खासकर युवा वर्ग में उस प्रखर युवा पत्रकार–नेता की कविताओं, 'राष्ट्रधर्म' में लिखे उनके लेखों, सम्पादकीयों के प्रति विशेष अनुराग था। स्वाभाविक तौर पर वे हिन्दुत्वनिष्ठ संगठनों के कार्यकर्त्ताओं के आदर्श बन गये थे; देश के ऐसे अटल–भक्त लाखों युवाओं में से ही एक थे शिवकुमार जी। जयपुर के स्वयंसेवक और उस वक्त यानी १९६५ में वहाँ वकालत पढ़ रहे शिवकुमार जी भी अटल जी को अपना आदर्श मान चुके थे। उन्होंने ठान लिया था कि उनका जीवन अब अटल जी को समर्पित करना है; यह कैसे होगा ? कब होगा ? इसका उन्हें उस वक्त कोई भान न था; सो होनी ने सारे रास्ते सुलभ बना दिये और ५ सितम्बर १९६९ से आज तक शिवकुमार जी अटल जी के साथ हैं, उनके अभिन्न अंग की तरह, तमाम दायित्वों में हाथ बँटाते आ रहे हैं। अटल जी पर विशेषांक के सिलसिले में उनसे नयी दिल्ली में अटल जी के ही आवास पर मिलना हुआ। उनके पास संस्मरणों का इतना खजाना है कि समझ नहीं आया, कहाँ से शुरू करें, क्या पूछें, क्यों छोड़ें ! असमञ्जस भाँपकर शिवकुमार जी ने ही शुरुआत की।

इस सवाल पर कि वे खुद कब जुड़े अटल जी के साथ ? शिवकुमार जी जैसे उस दौर को याद करते हुए बोले, "मैं तब दिसम्बर, १९६६ में सर्वोच्च न्यायालय में वकालत करने दिल्ली आ गया था; सुप्रसिद्ध वकील श्री गणपत लाल के साथ मामलों की पैरवी करनी शुरू की और पहला ही मामला राजस्थान के मुख्यमन्त्री रहे मोहनलाल सुखाड़िया के विरुद्ध दायर याचिका का था। ११ फरवरी, १९६८ को दीनदयाल जी मुगलसराय स्टेशन पर मृत अवस्था में मिले। इस घटना ने मुझे बेहद आहत किया था। फिर अटल जी जनसंघ के अध्यक्ष बने। उनका जयपुर का कार्यक्रम था, मैं साथ जाना चाहता था; पर अटल जी तैयार नहीं थे। वे कहते थे, मैं संन्यासी आदमी हूँ, आगे–पीछे कोई नहीं है, मुझे किसी साथ की क्या जरूरत ! पर श्री सोहन सिंह जी के कहने पर मैं उनके साथ जयपुर गया, प्रवास में निकटता बढ़ी। मैंने तभी ठान लिया था कि मैं अब पूरा जीवन अटल जी की सेवा में लगाऊँगा। लौटने के बाद, ५ सितम्बर, १९६९ को मैंने अपना सामान बाँधा और अटल जी के सांसद आवास १, फीरोजशाह रोड, नयी दिल्ली में आ गया। वह दिन है और आज का दिन है। मैंने अटल जी का साथ कभी नहीं छोड़ा। मैं अपने को धन्य मानता हूँ कि मेरा जीवन अटल जी की सेवा में बीत

रहा है। मैंने उनसे इतना कुछ सीखा, जाना, समझा है कि शब्दों में नहीं बता सकता। मैं आज जो कुछ भी हूँ अटल जी की वजह से ही हूँ। मैंने पहले ही तय कर लिया था कि न कोई पद लूँगा, न कहीं से वेतन। आज तक मैंने अपने उस प्रण का पालन किया है" बताते–बताते शिवकुमार जी अचानक चुप हो गये। स्मृतियों के अनन्त सागर में उतरे शिवकुमार जी को वहाँ से थोड़ा लौटाते हुए हमने फिर सवाल किया, तो क्या अटल जी ने भी कभी किसी पद को लेने के लिए कहा नहीं ? वे बोले, '१९९६ में उन्होंने मुझे राज्यसभा में जाने को कहा था; पर मैंने उनको अपना प्रण याद दिलाया और उसके लिए न कर दी।'

अटल जी का धीर–गम्भीर चिन्तनशील व्यक्तित्व है। १९८० में भाजपा के गठन के बाद मुम्बई में दिया उनका भाषण किसको याद नहीं होगा ? उन्होंने तब कविता लिखी थी– 'आओ फिर से दिया जलायें...।' कार्यकर्त्ताओं में नया जोश भरा था। 'अटल जी तर्क करते थे, कुतर्क नहीं; वे किसी की आलोचना या किसी पर अनर्गल टिप्पणी नहीं करते; उनकी वाणी मर्यादित होती है; पर मौके पर वे चुटकी भी लेने से नहीं चूकते।' एक उदाहरण देते हुए वे बताते हैं, 'एक बार संसद् में इन्दिरा गान्धी जी ने अटल जी का नाम लिये बिना व्यंग्य करते हुए कहा कि 'एक नेता हैं, जो हाथ उठा–उठाकर भाषण देते हैं।' इस पर अटल जी ने फौरन् कहा, 'मैंने तो आज तक ऐसा कोई नेता नहीं देखा, जो पैर उठाकर भाषण देता हो।' सदन में खूब ठहाके गूँजे। संस्मरण सुनाते हुए शिवकुमार जी ने बताया, 'अटल जी एक बार यूएन में भाषण देने अमरीका गये थे; मैं भी साथ था। इधर उनकी तबियत कुछ ठीक नहीं रहती थी, सो तय किया गया कि कार्यक्रम के बाद वहाँ डाक्टरों से जाँच करा ली जाये। जाँच हुई। रिपोर्ट में कुछ गड़बड़ी आयी; तो वहीं डाक्टर के क्लीनिक पर ही कागज माँगकर उन्होंने एक कविता लिखी– 'मौत से ठन गयी'। इसमें उनकी जिजीविषा पूरी प्रखरता से सामने आयी। उन्होंने मौत पर भी चुटकी ली और कहा था कि मौत की उम्र तो पल दो पल की होती है।' शिवकुमार जी कहते हैं, यह उन्हीं की संगत का असर है कि वे भी कविताएँ लिख लेते हैं अब। अटल जी शब्दों के साधक, भारत माँ के आराधक हैं। वे हिन्दुत्व के मन्त्र सर्वपन्थ समभाव में विश्वास करते हैं। 'लोग अटल जी के जीवन पर शोध करते हैं। मेरे विचार से अटल जी के व्यक्तित्व को जानना है, तो उनकी कविताओं के मर्म को समझना चाहिए।'

वे सही मायनों में सरस्वतीपुत्र हैं, दूरद्रष्टा हैं। उनका कद इतना ऊँचा है कि सम्मान से उनका नहीं, सम्मान का गौरव बढ़ जाता है। ऐसे व्यक्ति का हृदय स्वाभाविक ही विशाल होता है। 'वे दूसरों की भूलों को अनदेखा तो करते हैं; लेकिन बहुत सूक्ष्म तरीके से उसे भान करा देते हैं कि फलाँ जगह चूक हुई है, इसका ध्यान रखना चाहिए।' वे एक किस्सा सुनाते हैं। 'बात उन दिनों की है, जब मैं अटल जी के साथ उनके सांसद आवास १, फीरोजशाह रोड, नयी दिल्ली में रहता था। घर की चाबी मेरे पास रहती थी। एक दिन पार्टी सहयोगी और मित्रवर श्री जगदीश माथुर जी का फोन आया कि रीगल सिनेमा पर अच्छी फिल्म लगी है, देखने चलते हैं। ६ से ६ का शो देखेंगे। मैंने कहा, रात १० बजे अटल जी बंगलौर से लौटनेवाले हैं, उन्हें लेने हवाई अड्डे पहुँच जाना। मैं राजी हो गया; पर चिन्ता थी कि कहीं देर न हो जाये; और वही हुआ। फिल्म देर से छूटी। भागा–भागा हवाई अड्डे पहुँचा, तो पता चला, बंगलौर की उड़ान १० बजे से पहले ही आ गयी थी। हर तरफ ढूँढ़ा, अटल जी नहीं दिखे; लौटकर पहुँचा, तो देखा बरामदे में ब्रीफकेस रखकर अटल जी लॉन में टहल रहे थे। मुझे देखकर पूछा, 'कहाँ थे, हवाई अड्डे नहीं आये, क्या हुआ ?' पूरा मामला सुनने के बाद अटल जी ने कहा, 'कोई बात नहीं, ताला खोलो। अन्दर से कागज लेकर अभी राजमाता के पास 'सिन्धिया विला' जाना है।' मेरी उस भूल को बड़ी सहजता से अनदेखा कर दिया उन्होंने; लेकिन उस दिन से मैंने गाँठ बाँध ली, ऐसी लापरवाही फिर नहीं करूँगा; और तब से ऐसा ही हुआ है।'

शिवकुमार जी के साथ बतियाते हुए कितना वक्त बीत गया, उसका अन्दाजा ही नहीं हुआ, मन कर रहा था, सुनते जायें उन्हें; पर उनको भी अपने कई काम थे। सो आखिर में उन्होंने, 'अटल जी भविष्यद्रष्टा हैं। उन्होंने बहुत पहले बता दिया था कि दुनिया में आगे तीन बातें होंगी– एक, लोग मशीन में सिक्के डालकर खाने–पीने की चीजें ले लेंगे; लेकिन जिस गरीब पर पैसा नहीं है, वह इनसे वञ्चित रह जायेगा। दो, दुनिया उधार पर चलेगी, कर्जे लेकर चीजों की खरीद होगी; और तीन, अगला विश्वयुद्ध पानी या वायरस से शुरू होगा। आज वे तीनों बातें सामने दिखती हैं। ऐसी मशीनें हैं, जिनमें सिक्का डालो, तो पेय या खाद्य पदार्थ बाहर आते हैं; दुनिया क्रेडिट कार्ड से सामान खरीद रही है और तीसरा, पानी की किल्लत है, पश्चिमी देशों ने अनेक रोगों के वायरस का भारत में प्रवेश करा दिया है। ☐

प्रस्तुति– आलोक गोस्वामी

– डॉ. दिलीप अग्निहोत्री

अप्रत्यक्ष अटल अनुभूति

अटल जी के पूज्य गुरुवर डॉ. मदन मोहन पाण्डेय

मैंने अपनी पी.एच.डी. प्रो. मदन मोहन पाण्डेय के निर्देशन में की थी। वह डी.ए.वी. कालेज कानपुर में अटल बिहारी वाजपेयी के गुरु थे। उस समय प्रो. पाण्डेय वहाँ राजनीति शास्त्र के विभागाध्यक्ष थे। मैं पीएचडी कर रहा था। इस रूप में मैं उनका विद्यार्थी था। वह अक्सर अटल जी के बारे में बताते थे। मैं विद्यार्थी के रूप में उनका अनुभव करता था।

मैं किसी प्रत्यक्ष संस्मरण का गवाह नहीं हूँ; लेकिन संयोग है कि दो अलग–अलग प्रकरणों से उनको समझने का अवसर मिला, जिनका मैं गहराई से अनुभव कर सकता हूँ।

मैंने अपनी पीएचडी प्रो. मदन मोहन पाण्डेय के निर्देशन में की थी। वह डी.ए.वी. कालेज कानपुर में अटल बिहारी वाजपेयी के गुरु थे। उस समय प्रो. पाण्डेय वहाँ राजनीति शास्त्र के विभागाध्यक्ष थे। मैं पीएचडी कर रहा था। इस रूप में मैं उनका विद्यार्थी था। वह अक्सर अटल जी के बारे में बताते थे। मैं विद्यार्थी के रूप में उनका अनुभव करता था।

दूसरा अनुभव मुझे एक शिक्षक के रूप में हुआ। मैं डी.ए.वी. कालेज कानपुर में उसी विषय में शिक्षक नियुक्त हुआ, जिसमें अटल जी ने स्नाकोत्तर की उपाधि ली थी। मैं उन क्लासरूम को देखता, अनुभव करता था कि यहीं युवा अटल बैठते होंगे। राजनीति–शास्त्र विभाग में मेधावी छात्रों की सूची टँगी है। इसे देखिए, तो १९४६ पर नजर टिक जाती है। इसके आगे लिखा है– छात्र का नाम– अटल बिहारी वाजपेयी, डिवीजन–प्रथम, पोजीशन–द्वितीय।

प्रो. पाण्डेय ने मुझे उनके बारे में जो बताया, उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वह गजब के जिज्ञासु थे। प्रो. पाण्डेय कभी अपना कोई क्लास नहीं छोड़ते थे। राजनीति–शास्त्र के शिक्षक के रूप में प्रतिष्ठा दूर–दूर तक थी। खूब पढ़ाते थे। अन्य छात्र इतने से सन्तुष्ट हो जाते थे; लेकिन अटल जी में अधिक से अधिक ज्ञान अर्जित करने की इच्छा थी। वह साइकिल लेकर प्रो. पाण्डेय के आवास पर पहुँच जाते थे। अपने गुरु जी के बराबरी पर कभी नहीं बैठते थे। प्रो. पाण्डेय ने टीन का एक सन्दूक मुझे दिखाया था। अटल जी उसी पर बैठते थे। प्रो. पाण्डेय की पत्नी श्रीमती शारदा देवी अटल जी को पुत्रवत् मानती थीं। उन्होंने बताया था कि अटल जी पढ़ाई पूरी करने के बाद पुत्रवत् उनसे भी बातें करते थे। तब वह ज्ञान की नहीं, सहज घरेलू बात करते थे जैसे खाने के लिए क्या बना है ? भूख लगी होती, तो बताने में संकोच नहीं करते थे। अटल जी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। ऐसा नहीं था कि वह केवल पढ़ाई ही कर रहे थे। कानपुर में शिक्षा ग्रहण करने के साथ ही वह समाज जीवन में भी सक्रिय थे। एक बार प्रो. पाण्डेय जी कालेज के निकट ही कहीं जा रहे थे। उन्होंने देखा कि अटल जी अपने कई मित्रों के साथ आगे–आगे जा रहे थे। प्रो. पाण्डेय जी ने सोचा कि देखते हैं कि ये लड़के जा कहाँ रहे हैं। कुछ दूर जाने के बाद पता चला कि वह एक स्थान पर संघ की शाखा लगाने जा रहे हैं। प्रो. पाण्डेय जी को सन्तोष हुआ कि उनका विद्यार्थी खाली समय का उपयोग भी राष्ट्रवादी संगठन में करता है। अटल जी विदेश मन्त्री हुए, प्रधानमन्त्री बने; लेकिन अपने गुरु को वह साष्टांग प्रणाम ही करते थे। दोनों ने आजीवन गुरु–शिष्य की मर्यादा रखी। प्रो. पाण्डेय ने उनसे कुछ नहीं माँगा। अटल जी ने

डी.ए.वी. छात्रावास, कानपुर का मुख्यद्वार

कौशल किशोर पाण्डेय तथा शक्ति पाण्डेय वह पल याद करके रोमाञ्चित होते हैं, जब अटल जी सुरक्षा व कारों का काफिला कुछ दूर छोड़कर पैदल ही अपने गुरु जी से मिलने आये थे। शायद वह यह बताना चाहते थे कि आज भी आप गुरु हैं और मैं पहले की ही तरह विद्यार्थी। वह मदन मोहन जी के साथ अटल जी के दिल्ली आवास की यात्रा को भी याद करते हैं। अटल जी स्वागत के लिए बाहर आ गये थे तथा ड्राइंग रूम तक आते समय हाथ जोड़कर गुरु जी–गुरु जी कहते जा रहे थे। वहाँ पहुँचकर भी वह खड़े रहे, जब प्रो. पाण्डेय जी ने इशारा किया, तब बैठे, वह भी बड़े शिष्टाचार से।

भी सोचा कि वह ऐसा कोई पद अपने गुरु को दे सकते, जो मन्त्री–प्रधानमन्त्री से ऊपर हो। इसलिए गुरु के रूप में सदैव उनकी श्रेष्ठता बनाये रखी।

प्रो. पाण्डेय का निधन हुआ, तब अटल जी प्रधानमन्त्री थे। उनके पी. रोड स्थित आवास पर उस समय उनके पुत्र डा. कौशल किशोर पाण्डेय तथा पुत्रवधू डा. शक्ति पाण्डेय अन्तिम संस्कार की व्यवस्था में लगे थे। प्रो. पाण्डेय के निधन के करीब एक घण्टे बाद लैण्ड लाइन फोन की घण्टी बजी। फोन मैंने ही उठाया। उधर से आवाज आयी, मैं प्रधानमन्त्री आवास से बोल रहा हूँ। प्रधानमन्त्री जी प्रो. मदन मोहन पाण्डेय जी के पुत्र से बात करना चाहते हैं। मैंने कौशल जी को बताया, वह फोन पर आये। करीब दस मिनट तक बात हुई। बाद में उन्होंने बताया कि अटल जी संवेदना व्यक्त कर रहे थे। उनका गला भर गया था। आवाज से लगा कि आँखें नम होंगी। वह कह रहे थे कि गुरु जी ने केवल राजनीति–शास्त्र का ही ज्ञान नहीं दिया था, उन्होंने राजनीति का पाठ भी पढ़ाया था। राजनीति–शास्त्र तो उनसे क्लास में ही बहुत अच्छे ढंग से पढ़ लेते थे; लेकिन सच्चाई यह है कि नीति से प्रेरित राजनीति का ज्ञान लेने मैं उनके आवास पर जाता था। अटल जी के फोन रखने के करीब आधे घण्टे बाद कानपुर का प्रशासनिक अमला प्रधानमन्त्री की ओर से पुष्प–चक्र अर्पित करने वहाँ पहुँचा।

कौशल किशोर पाण्डेय तथा शक्ति पाण्डेय वह पल याद करके रोमाञ्चित होते हैं, जब अटल जी सुरक्षा व कारों का काफिला कुछ दूर छोड़कर पैदल ही अपने गुरु जी से मिलने आये थे। शायद वह यह बताना चाहते थे कि आज भी आप गुरु हैं और मैं पहले की ही तरह विद्यार्थी। वह मदन मोहन जी के साथ अटल जी के दिल्ली आवास की यात्रा को भी याद करते हैं। अटल जी स्वागत के लिए बाहर आ गये थे तथा ड्राइंग रूम तक आते समय हाथ जोड़कर गुरु जी–गुरु जी कहते जा रहे थे। वहाँ पहुँचकर भी वह खड़े रहे, जब प्रो. पाण्डेय जी ने इशारा किया तब बैठे, वह भी बड़े शिष्टाचार से। ज्ञान की लालसा और भारतीय संस्कृति के अनुरूप गुरु–शिष्य परम्परा का निर्वाह अटल जी के विराट् व्यक्तित्व की विशेषताएँ रहीं। □

डी.ए.वी. छात्रावास का कक्ष सं. १०४, अटल जी कानून की पढ़ाई करते समय इसी कक्ष में अपने पिताजी के साथ रहते रहे थे।

– कृष्ण कुमार अष्ठाना

उनसे सीखें सम्बन्धों का निर्वाह

व्यक्तिगत जीवन में ही नहीं, राजनीति में भी उनके अपने दल के ही नहीं, विरोधी दलों के नेताओं के साथ भी ऐसे ही सम्बन्ध थे और वे किसी भी कीमत पर उनका निर्वाह करने का प्रयत्न करते रहे। राजनीति में कट्टर दुश्मन और प्रख्यात कम्युनिस्ट नेता ज्योति बसु से उनकी प्रायः भेंट होती थी। कभी–कभी तो अन्य सहयोगियों को बाहर छोड़कर बन्द कमरे में भी दोनों धुरन्धर चर्चा करते। बड़ा आदर था दोनों के मन में एक–दूसरे के प्रति।
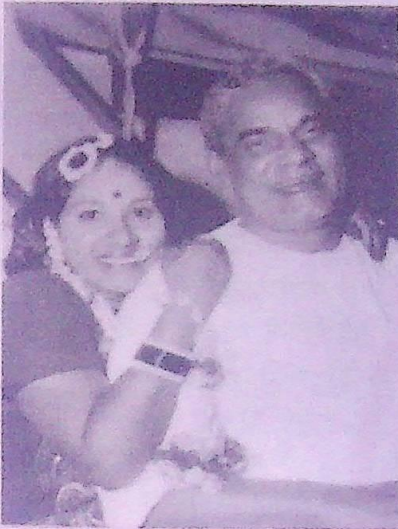
अटल जी ग्वालियर के रहनेवाले हैं। वहाँ भरापूरा परिवार है उनका। अपने ग्वालियर के वास्तव्य में मुझे दो–चार बार घर जाने का अवसर मिला है। भेंट प्रायः उनके बड़े भाई सदाबिहारी वाजपेयी से ही होती रही। उनका ग्वालियर में पुस्तक प्रकाशन और विक्रय का व्यवसाय रहा। अटल जी का केन्द्र उस समय दिल्ली हो गया था। अतः घर पर मिलना उनसे कभी नहीं हुआ।

मेरे इन्दौर आने (सन् १९७३) के कुछ समय बाद उनकी सबसे छोटी भतीजी माला भी विवाह होकर इन्दौर के एक तिवारी परिवार में आ गयी। यहाँ चर्चा में उन्होंने कई ऐसे प्रसंग सुनाये, जिनसे पता लगा कि सम्बन्धों में आत्मीयता का रस घोलना और उनका हर स्थिति में निर्वाह करना अटल जी का स्वभाव ही रहा है। बड़े परिवार का सदस्य होने के बाद भी सबके साथ अपनत्व भाव, सबके साथ मुक्त रूप से मिलना–जुलना, सबकी रुचि पहचानकर समय–समय पर सबके लिए उपहार लाना, ग्वालियर आने पर परिवार के कई लोगों के साथ ताँगे में बैठकर गोलगप्पे खाने जाना, ग्वालियर का सुप्रसिद्ध मेला घूमना, चाट खाना और सिनेमा देखना, यह उनका स्थायी स्वभाव रहा है। इसमें न कहीं संकोच और न पद–प्रतिष्ठा का व्यर्थ अभिमान!

अपनी शादी का प्रसंग सुनाती हुई श्रीमती माला तिवारी बताती हैं कि शादी ८ मई, १९७७ को थी, उस समय अटल जी मोरारजी देसाई के मन्त्रिमण्डल में विदेशमन्त्री बन गये थे। उनको शादी में आते–आते पता लग गया कि भतीजी माला को फूलों से बने आभूषण पसन्द हैं; किन्तु वह ग्वालियर में नहीं मिलते। अतः दिल्ली में उन्होंने उसके लिए व्यवस्था की और अपने साथ फूलों के वे सभी आभूषण लेकर आये। माला जी ने उन आभूषणों और अटल जी के साथ एक फोटो भी दिखाया और बताया कि एक बार उनके हाथ में फ्रैक्चर हुआ, तो दिल्ली के डॉक्टरों से सम्पर्क कर चिकित्सा की व्यवस्था की और समय–समय पर दिल्ली जाने की व्यवस्था करायी। एक बार चश्मे के टूटने पर उसके कुछ काँच के टुकड़े आँख में चले गये, जिनको इन्दौर के नेत्र–विशेषज्ञ डॉ. राजेन्द्र अग्रवाल के द्वारा निकालकर आँख को पूरी तरह ठीक कर लिया गया। उसके बाद अगले प्रवास पर इन्दौर आते ही अटल जी ने उस डाक्टर से भेंट की और कृतज्ञता ज्ञापन करना नहीं भूले।

परिवार में तो ऐसे कई प्रसंग हैं; लेकिन परिवारजनों के अतिरिक्त भी

जो उनके सम्पर्क में आया, उनका हो गया। माला जी ने बताया दिल्ली में उनकी कटिंग के लिए आनेवाले नाई की बेटी की शादी थी, उसने शादी का निमन्त्रण दिया और दिनभर की अपनी सारी व्यस्तताओं से मुक्त होकर अटल जी पहुँच गये उसके यहाँ शादी में।

दिल्ली में एक बार एक खरगोश पाल लिया। घर के किसी छोटे बच्चे की तरह से अटल जी स्वयं उसकी देखभाल करते। अपने हाथों से उसे हरी घास खिलाते। संसद् से लौटते ही उसे देखने पहुँचते। प्यार से उसकी पीठ पर हाथ फेरते। जैसे किसी बिछुड़े से मिल रहे हों, फिर एक दिन उसकी सहसा मृत्यु पर वे ऐसे ही रो पड़े, जैसे उनका कोई परिवार–जन ही उन्हें छोड़कर चला गया हो।

इन्दौर की सांसद सुमित्रा महाजन, जो अब लोकसभा अध्यक्ष भी हैं, बताती हैं कि अटल जी के प्रधानमन्त्री बनने के बाद वे खरगोन क्षेत्र के आदिवासी बन्धु–भगिनियों के एक समूह को उनसे मिलाने ले गयीं। अटल जी ने सारी सुरक्षा व्यवस्थाओं से हटकर उनके द्वारा लायी गयी पगड़ी बँधवायी, उनके लोक–संगीत का आनन्द लिया और फिर उसी क्षेत्र के पूर्व सांसद की बेटी के द्वारा लाये गये व्यञ्जनों का स्वाद लिया। बड़े सहज और औपचारिकताविहीन थे वे इस समय।

इन्दौर के एक बाल कलाकार ने कारगिल युद्ध और विजय को लेकर कुछ चित्र बनाये थे। अटल जी को मिलकर चित्र दिखाने का उसे २–३ मिनट का समय मिला; किन्तु उसके चित्र देखते–देखते और बातें करते हुए अटल जी ने २०–२५ मिनट उसके साथ बिताये। उसके साथ चाय पी और फिर उसे दरवाजे तक छोड़ने भी गये। किसी देश का प्रधानमन्त्री किसी 'नन्हें कलाकार' को इतना स्नेह और प्रोत्साहन दे, तो वह अटल जी ही हो सकते हैं।

व्यक्तिगत जीवन में ही नहीं, राजनीति में भी उनके अपने दल के ही नहीं, विरोधी दलों के नेताओं के साथ भी ऐसे ही सम्बन्ध थे और वे किसी भी कीमत पर उनका निर्वाह करने का प्रयत्न करते रहे। राजनीति में कट्टर दुश्मन और प्रख्यात कम्युनिस्ट नेता ज्योति बसु से उनकी प्रायः भेंट होती थी। कभी–कभी तो अन्य सहयोगियों को बाहर छोड़कर बन्द कमरे में भी दोनों धुरन्धर चर्चा करते। बड़ा आदर था दोनों के मन में एक–दूसरे के प्रति।

> नरसिंह राव जी ने अपने प्रधानमन्त्री रहते हुए जिनेवा सम्मेलन में जब भारत का पक्ष रखने के लिए अटल जी को कहा, तो विश्व आश्चर्यचकित था। विपक्ष के नेता पर भारत के प्रधानमन्त्री का इतना विश्वास !

नरसिंह राव जी ने अपने प्रधानमन्त्री रहते हुए जिनेवा सम्मेलन में जब भारत का पक्ष रखने के लिए अटल जी को कहा, तो विश्व आश्चर्यचकित था। विपक्ष के नेता पर भारत के प्रधानमन्त्री का इतना विश्वास !

और इन्हीं नरसिंह राव ने अटल जी के प्रधानमन्त्री के रूप में शपथ लेने के तुरन्त बाद अवसर पाकर चुपचाप अटल जी के हाथ में एक चिट थमा दी (इतने गोपनीय ढंग से कि कोई उसे देख नहीं पाया) जिसमें उल्लेख था उन कामों का, जिसे वे प्रधानमन्त्री के रूप में चाहकर भी नहीं कर पाये, मुख्य विषय था परमाणु–परीक्षण। जब यूथ कांग्रेस के बिट्टा की आतंकियों से सुरक्षा की बात नरसिंहराव जी ने अटल जी को बतायी, तो अटल जी ने तुरन्त ही सारी आवश्यक व्यवस्थाएँ बनवा दीं।

डी.एम.के. के करुणानिधि ने राजग से सम्बन्ध तोड़ लिये; किन्तु उनके और अटल जी के मन में किसी प्रकार की कड़ुवाहट नहीं थी। अतः उनके नेता मुरासोली मारन के निधन का समाचार मिलते ही अटल जी तुरन्त चेन्नई के लिए रवाना हुए। रात को १० बजे वहाँ पहुँचे। सुप्रीमो करुणानिधि के साथ मारन के निवास पर पहुँचकर संवेदना प्रकट की–श्रद्धाञ्जलि दी और वापस आ गये; लेकिन इस सामान्य–सी दिखनेवाली घटना का प्रभाव इतना हुआ कि करुणानिधि ने फिर कावेरी पानी विवाद में कभी कठोर रुख नहीं अपनाया।

उनका महान् व्यक्तित्व और वाणी से झरनेवाला आत्मीयता का रस किसी को भी अपना बना लेने में समर्थ रहा और जो उनका हुआ, वे उसके हो गये सदा–सदा के लिए। ☐

– तेलूराम काम्बोज
(महापौर, नगर निगम, गाजियाबाद, उ.प्र.)

अटल जी के हनुमान् जी

मारीशस का प्रत्येक हिन्दू भारत को पितृभूमि व पुण्यभमि मानकर उसके प्रति अगाध श्रद्धा रखता है। शिवरात्रि मारीशस का राष्ट्रीय पर्व है। शिवरात्रि के पर्व पर लाखों मारीशसवासी काँवड़ कन्धे पर उठाकर गंगा तालाब की ओर निकल पड़ते हैं। 'हर हर गंगे' तथा 'शिव–शिव भोले' के उद्घोषों से मारीशस गूँज उठता है।

१६८४ में जब मैं तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह के साथ मारीशस गया, तब प्रसिद्ध साहित्यकार शिवकुमार गोयल भी मेरे साथ थे। जब हम मारीशस में गंगा तालाब गये, तब हमें गंगा किनारे हनुमान् जी की भव्य प्रतिमा दिखायी दी। तभी बन्धुवर शिवकुमार गोयल कह उठते हैं, यह तो अटल जी के हनुमान् जी हैं। मैं उनके कथन को सुनकर आश्चर्य से उन्हें देखता हूँ, तो वे बताते हैं, अटल जी जब भारत के विदेश मन्त्री के रूप में मारीशस आये थे, तब उन्होंने गंगा तालाब के सुन्दर दृश्य को देखकर कहा था, इसके किनारे शिव मन्दिर के साथ–साथ हनुमान् जी की भव्य–मूर्ति भी स्थापित की जानी चाहिए। डेढ़ सौ वर्ष पूर्व यहाँ आये भारतीयों ने 'हनुमान् चालीसा' व हनुमान् भक्ति के बल पर ही अपने हिन्दू धर्म को बचाये रखा है। अतः हनुमान् जी यहाँ आने चाहिए।

उसके बाद अटल जी ने भारत में आकर सनातन धर्म के अध्यक्ष प्रेमचन्द गुप्ता को प्रेरित किया था कि वे मारीशस में हनुमान् जी की मूर्त्ति भेजें। अटल जी की प्रेरणा से जयपुर से हनुमान् जी की विशाल मूर्त्ति को मारीशस लाया गया था। गोयल जी पत्रकारों के साथ उस मूर्त्ति को देखने व रिपोर्टिंग करने जयपुर गये थे। अतः वे उस मूर्त्ति को 'अटल जी के हनुमान् जी' कहते थे।

प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी के साथ कम्बोडिया, लाओस व थाईलैंड की यात्रा के दौरान हवाई जहाज के केबिन में श्री तेलूराम काम्बोज
(यात्रा अवधि 4 से 8 नवम्बर, 2002)

जब हम मारीशस में गंगा तालाब गये, तब हमें गंगा किनारे हनुमान् जी की भव्य प्रतिमा दिखायी दी। तभी बन्धुवर शिवकुमार गोयल कह उठते हैं, यह तो अटल जी के हनुमान् जी हैं। मैं उनके कथन को सुनकर आश्चर्य से उन्हें देखता हूँ, तो वे बताते हैं, अटल जी जब भारत के विदेश मन्त्री के रूप में मारीशस आये थे, तब उन्होंने गंगा तालाब के सुन्दर दृश्य को देखकर कहा था, इसके किनारे शिव मन्दिर के साथ–साथ हनुमान् जी की भव्य–मूर्त्ति भी स्थापित की जानी चाहिए।

मारीशस के तत्कालीन क्रीडा–मन्त्री तथा हिन्दू महासभा और सनातन धर्म सभा के प्रधान श्री दयानन्द बसन्त राव ने मुझे व गोयल जी को अपने घर पर भोजन पर बुलाया, तब उन्होंने अटल जी के हनुमान् जी की कहानी सुनाते हुए कहा कि ये वही हनुमान् जी हैं, जिन्हें अटल जी ने भारत से मारीशस भेजा था।

पिछले दिनों भारत के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने मारीशस की यात्रा के समय गंगा तालाब के किनारे 'अटल जी के हनुमान् जी' के भी दर्शन किये थे। □

– देवदत्त

श्रीमाँ से अटल जी ने क्या माँगा ?

सन् १६७२ में श्री अरविन्द की शताब्दी में परम पूज्य गुरुजी का सन्देश प्रकाशित होने के पश्चात् भारतीय जनसंघ ने निर्णय किया कि पूरी कार्यसमिति श्रीमाँ का दर्शन करने पाण्डिचेरी जायेगी। श्रीमाँ का स्वास्थ्य ऐसा नहीं था कि वे ६० लोगों से चर्चा कर सकें। अतः माँ के सिंह और सेवक चम्पक लाल जी ने बताया था कि श्रीमाँ सभी को आशीर्वाद देंगी। चर्चा का अवकाश नहीं होगा।

उस समय अटल जी भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष थे। निर्णय हुआ कि कार्यसमिति की बैठक चेन्नै में रखी जाये और वहीं से सभी पाण्डिचेरी चलें।

तदनुसार कार्यसमिति की बैठक चेन्नै में हुई। सभी की अगवानी के लिए मैं पाण्डिचेरी से चेन्नै आया हुआ था। जाने के लिए बस की व्यवस्था थी। मैं पहले जाकर बैठ गया। अभी कुछ ही पल बीते थे कि मेरे पूर्व परिचित (स्व.) वसन्त गजेन्द्र गड़कर आकर बोले, "तुम यहाँ बैठे हो। अटल जी तुम्हें खोज रहे हैं।"

मैं उतरकर अटल जी की कार की ओर गया, तो देखा कि अटल जी कार का आगे का दरवाजा खोल कर खड़े हैं।

वे बोले, "आज आप हमारे मार्गदर्शक हैं। आगे बैठो।" पीछे बंगाल जनसंघ के अध्यक्ष हरिपद भारती सपत्नीक बैठे थे। उसी में अटल जी का घुसना असम्भव था; पर अटल जी बोले, "ये दोनों एक ही हैं। तुम चिन्ता मत करो।" और वे भी अट्टहास के बीच उनमें समाविष्ट हो गये।

पाण्डिचेरी पहुँचने पर अटल जी, आडवाणी जी सहित पूरी कार्यसमिति ने श्री अरविन्द की समाधि को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। व्यवस्था बनी अकारादि क्रम से सभी लोग श्रीमाँ को प्रणाम करने जायेंगे। भागलपुर के श्री मदनलाल हिम्मत सिंहका श्रीमाँ से परिचय करायेंगे और सभी सदस्य श्रीमाँ को प्रणाम करेंगे।

तदनुसार सभी पंक्तिबद्ध होकर श्रीमाँ के कक्ष तक गये। चम्पकलाल जी एक–एक का नाम पुकारते और श्री मदनलाल जी परिचय पंक्तियाँ पढ़ते थे। यह एक घण्टे चला। परिचय की समाप्ति पर अटल जी फिर श्रीमाँ के कक्ष में घुसने लगे। श्री चम्पकलाल जी ने रोकने का प्रयास किया; पर श्रीमाँ ने उन्हें रुकने का संकेत किया।

अटल जी श्रीमाँ के सामने घुटनों के बल बैठ गये और हाथ जोड़कर बोले : Mother ! I Want Akhand Bharat ! (मैं अखण्ड भारत माँगता हूँ।)

श्रीमाँ अटल जी की आँखों में देखती रहीं। फिर अटल जी के शीश पर हाथ रखते हुए कहा– One day; you will have it. (एक दिन तुम इसे प्राप्त करोगे।) □

– श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी– ६०५००२

– डॉ. चन्द्र त्रिखा

अटल जी : स्मृति के वातायन से

मैं उन दिनों अपने गृहनगर अबोहर में था 'दि ट्रिब्यून' के संवाददाता के रूप में। स्थानीय जनसंघ–प्रधान चाँद कुमार जायसवाल का फोन आया, 'नाश्ते के लिए घर आ जाओ, अटल जी पहुँचनेवाले हैं।' मैंने तत्काल स्कूटर उठाया और चल दिया। बरसों से उस विभूति को करीब से देखने व बातें करने का मन था। वैसे मैं कुछ बरस पहले वाजपेयी और आडवाणी को वेष बदलकर, कनाट प्लेस दिल्ली के रीगल सिनेमा की खिड़की से टिकट खरीदते और सिनेमा हाल में प्रवेश करते देख चुका था। उससे पहले एक पत्रकार सम्मेलन में वाजपेयी जी से मिल भी चुका था। मैं फौरन् उधर लपका था। अभी इतना ही बोल पाया था कि 'आप...।' उन्होंने फौरन् टोक दिया, 'अरे भाई माफ करो, मैं वो नहीं हूँ। नाहक खबरें मत फैला देना। मैं अटल जी का चचेरा भाई हूँ। बस शक्ल मिलती है। बहरहाल, मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि 'चचेरे भाई' के फिल्म देखने की चर्चा भी खबरों में न करना। आखिर भाई, हम भी तो इन्सान हैं। दिल तो इधर भी धड़कता है।'

मैं सब समझ गया था। मैंने भी उनकी भावना का सम्मान किया। उस दिन जब नाश्ते पर बात हुई, तो मैंने याद दिलाया रीगल सिनेमा वाला प्रकरण। खूब हँसे और फिर बोले, "तुम्हारा अहसानमन्द हूँ भाई। पत्रकार इतने शरीफ होते तो नहीं" और फिर एक कहकहा। बोले, "बुरा मत मानना, मैंने भी लम्बी अवधि तक पत्रकारिता ही की है। ऐसे अहसान मैं भी तो उन नेताओं पर करता रहा हूँ।" इससे पहले कि मैं कुछ पूछूँ, स्वयं ही बोले, "देखो भाई। जिन्दगी में आदर्शों व यथार्थ दोनों का निर्वहन करना होता है। सार्वजनिक जिन्दगी व निजी जिन्दगी एक जैसी नहीं होती। मुझे मालूम है कि नाश्ते में चाट–पकौड़ी अच्छी नहीं होती; मगर मैंने स्वयं कहा है कि 'ब्रेड–बटर' और 'फ्रूट जूस' छोड़ो, मेरा मन तो कुछ चटपटा खाने को है। अब कोई इस बात पर भी एतराज करे कि जनसंघ–प्रधान तो चटोरा है, तो इसका क्या इलाज है ?"

उस दिन जब नाश्ते पर बात हुई, तो मैंने याद दिलाया रीगल सिनेमा वाला प्रकरण। खूब हँसे और फिर बोले, "तुम्हारा अहसानमन्द हूँ भाई। पत्रकार इतने शरीफ होते तो नहीं" और फिर एक कहकहा। बोले, "बुरा मत मानना, मैंने भी लम्बी अवधि तक पत्रकारिता ही की है। ऐसे अहसान मैं भी तो उन नेताओं पर करता रहा हूँ।" इससे पहले कि मैं कुछ पूछूँ, स्वयं ही बोले, "देखो भाई। जिन्दगी में आदर्शों व यथार्थ दोनों का निर्वहन करना होता है।

मैंने उनसे अनुमति लेकर कुछ नितान्त निजी सवाल पूछे; मगर उन्होंने इसी शर्त पर बातें कीं कि 'ये नितान्त निजी हैं, जो तुम्हारे 'मासूम' आग्रह पर बता रहा हूँ; मगर इन बातों का मेरे राजनीतिक चिन्तन या जीवन से किसी भी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं।' मेरे प्रश्न भी उनकी निजी जिन्दगी के बारे में थे। कुछ बताया, कुछ टाल गये यह कहते हुए कि कई बार आदर्शों की वेदी पर भावनाओं और भावनात्मक सम्बन्धों की बलि भी देनी होती है, लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि सब कुछ भुला दिया जाये। स्मृतियों के उजाले में कई बार राजनीतिक जिन्दगी के शुष्क सफर में बड़ी रोशनी देते हैं। फिर यह भी लगता है कि छोटी–छोटी खुशियों के लिए बड़े उद्देश्य को हाशिये पर कैसे बुहार दें ! हाँ,

कभी–कभी छोटी–छोटी खुशियों को महसूस तो कर ही लेना चाहिए। इतना ही काफी होता है।"

बरसों पूर्व 'कादम्बिनी' में उनका एक संस्मरण छपा था। 'यह उन दिनों की बात है, जब मैं भारतीय जनसंघ का अध्यक्ष और महाराष्ट्र के दौरे पर गया था। अनेक स्थानों पर जाना था। भोजन के बाद मिष्ठान्न परोसना महाराष्ट्र की पद्धति है। 'मधुरेण समर्पयेत्' भोजन परोसने की महाराष्ट्र की विधि भी बड़ी अच्छी है। पहले दिन मैंने जिस नगर में भोजन किया, वहाँ दोपहर और रात्रि, दोनों समय गुलाबजामुन दिये गये। दोपहर को गुलाबजामुन अच्छे लगे। रात को गुलाबजामुन के पुनः दर्शन करने पर माथा ठनका; किन्तु मेहमान था, मुँह नहीं खोला। हाँ, मुँह खोलकर गुलाबजामुन जरूर निगल गया। दूसरे दिन दूसरे स्थान पर पहुँचा। वहाँ भी गुलाबजामुन सुबह–शाम दोनों समय परोसे गये। फिर भी मौन नहीं तोड़ा; लेकिन जब तीसरे दिन भी गुलाबजामुन से पाला पड़ा, तब मैं अपना धीरज खो बैठा। फिर भी भोला बनकर बोला, "क्या महाराष्ट्र में गुलाब जामुन अत्यन्त प्रिय मिष्ठान्न है ?" इस प्रश्न का जो उत्तर मिला, उसे सुनकर मैं चौंक गया। जिसके यहाँ भोजन था, उस कार्यकर्त्ता ने बताया कि केन्द्रीय कार्यालय की ओर से पत्रक आया है और उसमें साफ–साफ शब्दों में लिखा है कि 'वाजपेयी जी को गुलाबजामुन प्रिय हैं।' इसलिए हमने गुलाबजामुनों की विशेष व्यवस्था की।

अब हर जगह गुलाबजामुन मिलने की गुत्थी सुलझ गयी। जब मैंने उन्हें बताया कि पहले जब मैं महाराष्ट्र आया था, तब मैंने गुलाबजामुन की शिष्टाचारवश तारीफ कर दी थी। वैसे अच्छी मिठाइयाँ और भी हैं। एक ही मिठाई बार–बार खाना अरुचिकर हो सकता है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। सभी लोग सुनकर हँसने लगे। जब मैं महाराष्ट्र जाता हूँ, तब 'गुलाबजामुन प्रसंग' की चर्चा करके कहीं–न–कहीं जरूर हास्य–विनोद होता है। जब देश के किसी और भाग में भी गुलाबजामुन के दर्शन हो जाते हैं, तब मुझे महाराष्ट्र की याद जरूर आ जाती है।

अब मैंने अपने कार्यालय को यह बता दिया है कि भोजन के सिलसिले में पत्रक भेजने की भूल कभी न करें। जहाँ जाना, वहाँ खाना, जैसा भी मिले, उसमें स्वाद लेना– यही सयाना काम है।'

अब अटल बिहारी वाजपेयी जी स्वास्थ्य के एक अजब मोड़ पर हैं। मन करता है कि वैसा सर्वाधिक ओजस्वी वक्ता, सिद्धान्तवादी राजनीतिज्ञ, प्रखर राष्ट्रभक्त, संवेदनशील कवि एवं दूरदर्शी नेता एक बार तो अपनी जबान से बताये कि "कैसा लगता है उन्हें यह अहसास कि यह पूरा देश आज भी उन्हें उनके हर रूप में बेपनाह प्यार करता है।" मगर क्या अपने समय का महानतम संसदज्ञ और सम्भवतः सर्वश्रेष्ठ वक्ता अब कभी अपनी भावनाओं को पुराने प्रवाह में अभिव्यक्त कर पायेगा ? इस प्रश्न का उत्तर 'न' में सुनने का मन नहीं करता। अटल जैसे ओजस्वी व्यक्तित्व बार–बार पैदा नहीं होते हैं। यह भारत देश और भारतीय राजनीति का सौभाग्य है कि उन जैसी महान् हस्ती यहाँ पैदा हुई। विषम गठबन्धन के साथ सरकार चलाने का करिश्मा अटल बिहारी वाजपेयी जैसा महान् राजनेता ही कर सकता है। भारतीय राजनीति में आनेवाली पीढ़ियों के लिए अटल जी हमेशा प्रेरणा–स्रोत बने रहेंगे। ☐

(साभार)

संसार के मानचित्र पर एक महान् राष्ट्र– भारत ! उसका हृदय–स्थल मध्य प्रदेश। इस प्रदेश का ऐतिहासिक शहर– ग्वालियर। इसी शहर का प्रसिद्ध मोहल्ला– शिन्दे की छावनी और इस मोहल्ले में हमारे घर का पिछवाड़ा, जहाँ २५ दिसम्बर, १६२६ के सुमंगल दिवस (यह तिथि विद्यालयीन प्रमाण–पत्रानुसार है, वैसे १६२४ है) ब्राह्म मुहूर्त में एक अमृत–पुष्प खिला– जिसकी खुशबू से तमाम जमाना महक उठा... एक सूर्य उदित हुआ, अपनी रोशनी से जिसने सारे जहाँ को जगमगा दिया।

मेरी सबसे बड़ी भूल

'राजनीति में' आना, मेरी सबसे बड़ी भूल है। इच्छा थी कि कुछ पठन–पाठन करूँगा। अध्ययन और अध्यवसाय की पारिवारिक परमपरा को आगे बढ़ाऊँगा। अतीत से कुछ लूँगा और भविष्य को कुछ दे जाऊँगा; किन्तु राजनीति की रपटीली– राह में कमाना तो दूर रहा, गाँठ की पूँजी भी गँवा बैठा। मन की शान्ति मर गयी। सन्तोष समाप्त हो गया। एक विचित्र–सा खोखलापन जीवन में भर गया। ममता और करुणा के मानवीय मूल्य मुँह चुराने लगे.... आत्मा को कुचलकर ही आगे बढ़ा जा सकता है. ... स्पष्ट है, साँप–छछूँदर जैसी गति हो गयी है– न निगलते बने, न उगलते !'

– अटल बिहारी वाजपेयी

— अटलबिहारी वाजपेयी

निर्णय की घड़ी

सन् १९६७ में मतदाताओं ने परिवर्तन की इच्छा का प्रमाण दिया था। सन् १९६९ में जनता को परिवर्तन की दिशा का निर्देश करना है।

गत आम चुनाव में नारा था— कांग्रेस को हटाओ : देश को बचाओ। जनता ने जगह—जगह कांग्रेस को हटाया। सत्ता पर एकाधिकार टूटा। राजनीतिक जीवन की जड़ता समाप्त हुई। लोगों ने मताधिकार का मूल्य पहचाना। लोकतन्त्र की वास्तविक शक्ति प्रकट हुई।

जहाँ भी जनता कांग्रेस को हटाकर एक दल को आगे लायी, वहाँ परिवर्तन के फलस्वरूप राजनीतिक अस्थिरता पैदा नहीं हुई। आज दिल्ली में भारतीय जनसंघ और तमिलनाडु में द्रमुक दृढ़ता के साथ शासनसूत्रों का सञ्चालन कर रहे हैं। उनकी उपलब्धियों के बारे में मतभिन्नता हो सकती है; किन्तु शासन के स्थायित्व के बारे में कोई सन्देह नहीं हो सकता।

किन्तु जिन प्रदेशों में एक को स्पष्ट बहुमत, प्राप्त नहीं था, उनमें मिली—जुली सरकारें बनीं। इन सरकारों का रूप, रंग और रस अलग—अलग था। कुछ का स्वाद कड़वा रहा, जैसे पश्चिमी बंगाल की संयुक्त सरकार, जिसने भूमिहीनों को भूमि देने के लिए कानून बनाने के बजाय नक्सलवाड़ी को प्रोत्साहन दिया और मजदूरों को राहत पहुँचाने के स्थान पर घेराव को बढ़ावा देकर औद्योगिक अशान्ति को जन्म दिया, मजदूरों को बेकार बनाया।
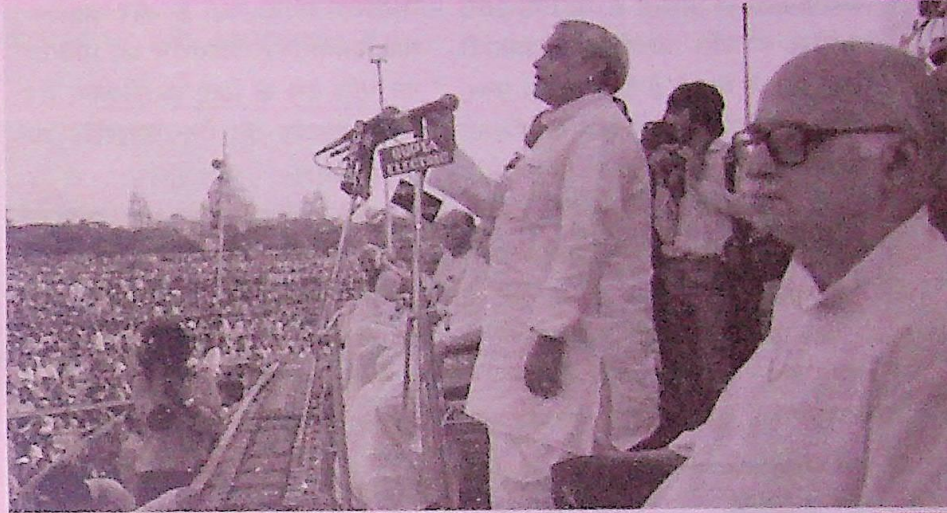
किन्तु पंजाब की संयुक्त सरकार निश्चय ही मुँह में मिठास छोड़ गयी है। उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी— साम्प्रदायिक सौहार्द और सद्भावना। कांग्रेस को यह सहन नहीं हुआ। फूट का खेल बिगड़ते देख वह बेचैन हो उठी। उसने सरदार लक्ष्मण सिंह गिल की पीठ थपथपायी। दल—बदल को न केवल प्रोत्साहन दिया; बल्कि अल्पमत की सरकार का समर्थन भी किया। संसदीय लोकतन्त्र के इतिहास में यह एक विचित्र प्रयोग था।

इसके विपरीत गैरकांग्रेसी दलों ने जो मिली—जुली सरकारें बनायीं, वे जनभावनाओं के अनुकूल और कांग्रेस के दुःशासन से त्रस्त जनता को राहत देने की कामना से प्रेरित थीं। यदि कुछ प्रदेशों में वे विफल हुईं, तो उसके दो मुख्य कारण हैं — कुछ घटक दलों द्वारा संयुक्त सरकारों की मर्यादा को न पहचानकर उन्हें अपने—अपने साँचे में ढालने का प्रयास करना और दूसरा, केन्द्र में बैठी हुई कांग्रेस के द्वारा इन सरकारों के प्रति कुटिल नीति का अपनाया जाना।

संयुक्त सरकार संक्रमणकाल की देन है। जब तक एक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता, अनेक दलों के मिलकर काम करने की विवशता बनी रहेगी; किन्तु संक्रमणकाल जितना छोटा हो, उतना अच्छा।

सन् १९६७ का निर्णय कांग्रेस के विरुद्ध था। वह निषेध की प्रबल प्रतिक्रिया से परिचालित था। वह नकारात्मक था; किन्तु उसमें परिवर्तन की इच्छा असंदिग्ध और दो टूक थी।

मध्यावधि चुनाव प्रश्नवाचक चिह्न बनकर खड़ा है। सन् १९६९ क्या केवल निषेध का सन्देशवाहक बनेगा ? क्या वह मतदाता के मात्र बदलते हुए 'मूड'

का दिग्दर्शन होगा ? क्या राजनीति कोई ठोस और स्पष्ट दिशा नहीं लेगी ?

प. बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और पंजाब का दौरा करने के बाद मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि जनमानस कांग्रेस को पुनः सत्तारूढ़ देखने के लिए इच्छुक नहीं है। पश्चिम बंगाल में, जहाँ जनता कम्युनिस्टों की अराजकता से पीड़ित है, वहाँ भी लोग कांग्रेस के प्रति अत्यधिक आशावादी नहीं हैं। वे चाहते हैं एक तृतीय पन्थ, जो कांग्रेस के दुःशासन और कम्युनिस्टों के राष्ट्रविरोधी और हिंसात्मक कार्य–व्यापार से उन्हें मुक्ति दिला सके। यही स्थिति बिहार में है। वहाँ कांग्रेस समाप्तप्राय है; किन्तु जनता कम्युनिस्टों तथा उनके सहयात्रियों को नहीं चाहती। संसोपा को बिहार में कम्युनिस्टों का पिछलग्गू होने का भारी मूल्य चुकाना पड़ेगा।

सभी प्रदेशों में भारतीय जनसंघ की प्रगति के लिए अनुकूल वातावरण है। जनता जनसंघ के प्रखर राष्ट्रवाद से प्रभावित है। लोकतन्त्र में हमारी गहरी निष्ठा है। लोकतन्त्र में गहरी निष्ठा ने जनमानस को स्पर्श किया है। लोग जानते हैं कि जनसंघ यथास्थितिवादी नहीं है और आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति देने के लिए कृतसंकल्प है।

आवश्यक है कि जनसंघ के कार्यकर्त्ता घर–घर और झोपड़ी–झोपड़ी जाकर प्रत्येक मतदाता से सम्पर्क स्थापित करें, उसकी व्यथा–कथा को सुनें और उसके रोग का सही निदान तथा उपचार उसे समझायें। हमारे पास साधन कम हैं। वाहनों का अभाव है; किन्तु इसकी पूर्ति हमें अपने परिश्रम और प्रयत्नों से करनी होगी।

आज हमारे बीच में पं. दीनदयाल उपाध्याय नहीं हैं। यह पहला चुनाव है, जो हम उनके विना और उनके बाद लड़ रहे हैं। उनकी पवित्र स्मृति से प्रेरणा लेकर संघर्ष में जुट जायें। ११ फरवरी को उनकी प्रथम पुण्य तिथि होगी। ११ फरवरी को ही चुनाव–परिणाम आयेंगे। आइये, परिणामों को अपने अनुकूल बनाने के लिए जी–जान से प्रयत्न करें।

निर्णय की घड़ी आ गयी है। परीक्षा का काल सामने है। हमारा कर्त्तृत्व कसौटी पर है। हमारी संघटन–कुशलता दाँव पर लगी है। सन् १९६७ कांग्रेस का अवसान लेकर आया था। सन् १९६९ जनसंघ का अभ्युत्थान लेकर आये, यही कामना है। □

– योगेन्द्र नाथ योगी
(पूर्व अध्यक्ष, उ.प्र. ललित कला अकादमी)

आत्मीयता के वे क्षण

आर्ट कालेज की शिक्षा शुरू करने से पूर्व, १९४८ की बात होगी। मुझ पर कार्टून बनाने का शौक सवार था, इसी सिलसिले में 'राष्ट्रधर्म' से सम्पर्क हुआ। अटल जी व राजीवलोचन अग्निहोत्री सम्पादक होते थे। उसमें साज–सज्जा का कार्य कभी–कभी मैं भी करता था। इसी बीच दैनिक 'स्वदेश' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। सम्पादक थे अटल बिहारी वाजपेयी। समय–समय पर कार्टून बनाने का काम मुझे सौंपा गया। श्री नानाजी देशमुख, पं. दीनदयाल उपाध्याय और अटल जी समाचारों पर विमर्श कर पत्र का सञ्चालन करते थे। तब भारत प्रेस, जहाँ इन पत्रों का प्रकाशन होता था, सदर में था और मेरा निवास नरही में। जरा–सी चूक होने पर उसे ठीक करने के लिए घर लौटना पड़ता था। यह आवश्यकता और अनिवार्यता दोनों ही थी। मुझे तो कार्टून बनाने में आनन्द आता था, उससे ज्यादा प्रकाशित होने पर गर्व होता था। अटल जी की दृष्टि मेरे कार्यकलापों पर थी। निरन्तर पैदल घर से आना–जाना जानते थे। अतएव निर्णय लिया कि मुझे वाहन की सुविधा मिलनी चाहिए, अगले दिन उस समय की अति प्रचलित 'हिन्द साइकिल' मिल गयी। लगा जैसे एक अमूल्य धरोहर मिल गयी हो। खुशी के साथ उत्साह बढ़ा– अब मेरे सामने लक्ष्य स्पष्ट उभर रहा था, भविष्य प्रकाशमान था– मैंने इन महापुरुषों के परिश्रम और लगन को बहुत नजदीक से देखा था। वे मेरे आदर्श बन गये थे। मैंने दीनदयाल जी को ट्रेडिल मशीन (पैर से चलनेवाली छपाई की मशीन) चलाते देखा है; अटल जी और नाना जी को रात–रात भर जागकर प्रेस में काम करते देखा है। आज जिन ऊँचाइयों पर वे हैं, अकल्पनीय है।
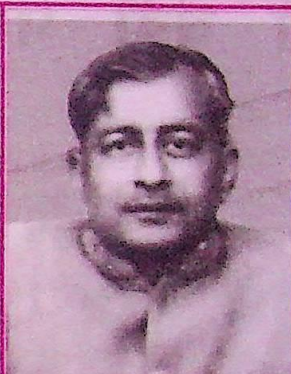
श्री अटल बिहारी वाजपेयी एवं श्री राजीव लोचन अग्निहोत्री

मुझ पर कार्टून बनाने का शौक सवार था, इसी सिलसिले में 'राष्ट्रधर्म' से सम्पर्क हुआ। अटल जी व राजीवलोचन अग्निहोत्री सम्पादक होते थे। उसमें साज–सज्जा का कार्य कभी–कभी मैं भी करता था। इसी बीच दैनिक 'स्वदेश' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। सम्पादक थे अटल बिहारी वाजपेयी। समय–समय पर कार्टून बनाने का काम मुझे सौंपा गया।

x x x

गर्मियों की छुट्टियों के अवकाश में अपनी ननिहाल मुजफ्फरनगर जाना नियम–सा बन गया था। वहाँ से अक्सर मसूरी तथा हरिद्वार का चक्कर लग जाता था। वहाँ के पहाड़, झरने और गंगा मुझे आकर्षित करते हैं। उनके दृश्य चित्र बनाता हूँ। इसी दौरान एक बार दिल्ली जाना हुआ, चाँदनी चौक में घण्टाघर के पास भाभी के साथ कुछ खरीदारी कर रहा था, चारों तरफ शोरगुल, भीड़भाड़ का माहौल। चाट बेचने वाले आवाजें देकर बुला रहे थे। इसी बीच किसी ने मेरा हाथ घसीटा, मैंने चाट वालों की तरफ देखकर अपना हाथ झटका, तभी आवाज आयी– कहो कलाकार ! कहाँ घूम रहे हो ? मैं आश्चर्यचकित मुड़कर देखता हूँ– तो अटल जी आ रहे थे, मैं आदर मर्यादा में डूबा उन्हें एकटक निहार रहा था, आँखें स्नेह–रस में छलछला गयीं। मैं तो चाटवाला समझ गुस्से में था,एकदम ठण्डा पड़ गया। किसी खुमारी में मस्त अकेले कुरता, धोती और कोल्हापुरी चप्पल में उन्हें देखकर सुखद आश्चर्य हुआ। अपने निवास से दूर अनजानी जगह ऐसे आश्चर्यजनक ढंग से मुलाकातें होती हैं, तो सुखद अनुभव होता है। हमारा उनका काफी समय रहा साथ यादगार रहा। ये मुलाकातें १९५२ या ५३ की रही होंगी। मेरे लिए वह क्षण स्नेह और आत्मीयता से भरा था। अपने को भाग्यशाली मानता हूँ– जीवन में ऐसे महान् व्यक्तियों का सान्निध्य मिला। ☐

८/१२, गुरुभारतीपुरम्, रानी लक्ष्मी बाई स्कूल के सामने,
इन्दिरानगर, लखनऊ–२२६०१६ (उ.प्र.)

"हम सत्य के लिए संघर्ष छेड़ रहे हैं। न्याय की रक्षा के लिए बलि–पथ पर पाँव बढ़ा रहे हैं। अत्याचारों की अग्नि परीक्षा हमारे रूप को और भी निखार देगी। दमन का दमन हमारे माथे पर विजय का तिलक बनकर चमकेगा। बलिदानों के गौरवपूर्ण इतिहास में एक उज्ज्वल अध्याय और जुड़ जायेगा। आओ, इस इतिहास के निर्माण में हाथ बँटाने के लिए कमर कस कर मैदान में कूद पड़ें। सच्चे स्वराज्य तथा वास्तविक लोकतन्त्र की स्थापना का एकमेव यही मार्ग है। उसकी विजय निश्चित है।

– अटल बिहारी वाजपेयी

कश्मीर की वेदी पर वह आत्मबलिदान

भारतीय जनसंघ के प्रधान डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का आत्मबलिदान अन्याय के परिमार्जन के लिए हुआ। अब्दुल्लाशाही के अमानुषिक अत्याचारों से त्रस्त जम्मू की जनता की करुण पुकार सुनकर वे चुप न रह सके। माँ–बहनों के अपमानों की गाथाएँ उनकी अपार सहन–शक्ति के लिए भी असह्य हो गयीं। भारतमाता के पुनः खण्डित हो जाने का खतरा देखकर उनका हृदय विकल हो उठा। शेख अब्दुल्ला को खुश करने के लिए राष्ट्र के जीवन तथा सम्मान को पुनः एक बार दाँव पर लगाने की कांग्रेस की नीति का विरोध करना, उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा। अनेक बार लोकसभा में अपने भाषणों में उन्होंने प्रधानमन्त्री पं. नेहरू से कश्मीर के प्रश्न को राष्ट्रहित की दृष्टि से सुलझाने की प्रार्थना की। सारे देश में 'कश्मीर दिवस' का आयोजन कर कश्मीर राज्य को पूरी तरह भारत में मिलाने की माँग की गयी। शेख अब्दुल्ला तथा उनके साथियों की पृथक्तावादी मनोवृत्ति का विरोध किया गया; पर भारत सरकार के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी।

जनमत की खुली अवज्ञा कर नेहरू जी ने शेख अब्दुल्ला के साथ ऐसा समझौता कर लिया, जिससे न केवल भारत की एकता पर कुठाराघात हुआ, अपितु जम्मू तथा लद्दाख के १५ लाख निवासियों का भविष्य भी खतरे में पड़ गया। समझौते के अन्तर्गत कश्मीर को अपना
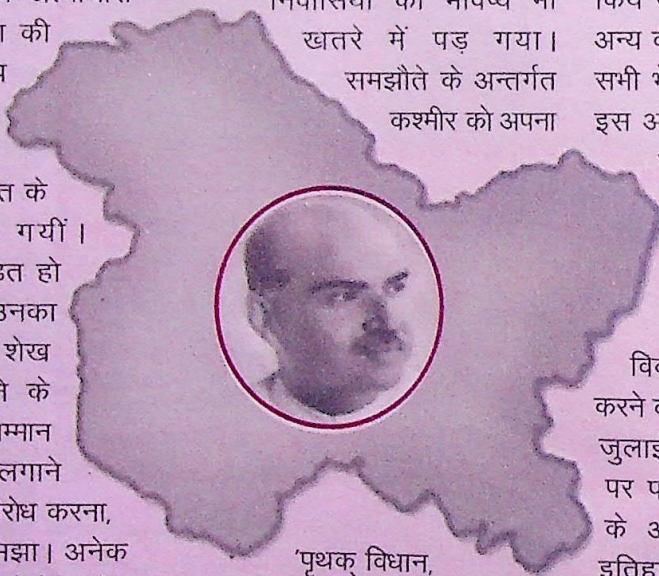
'पृथक् विधान, पृथक् प्रधान तथा पृथक् निशान' रखने का अधिकार दे दिया गया। सारे देश में उस समझौते का विरोध हुआ, डॉ. मुखर्जी ने लोकसभा में अपने अकाट्य तर्कों तथा प्रबल प्रमाणों से उस समझौते को भारत तथा कश्मीर दोनों के लिए अहितकर सिद्ध किया; किन्तु नेहरू जी अपने दुराग्रह पर डटे रहे। यहाँ तक कि जम्मू–कश्मीर राज्य की वैधानिक स्थिति में मूलभूत परिवर्त्तन करने से पूर्व उन्होंने जम्मू तथा लद्दाख की जनता के प्रतिनिधियों से परामर्श करना भी आवश्यक न समझा।

इस स्थिति में जम्मू की जनता के सम्मुख भारत में पूरी तरह शामिल किये जाने की माँग करने के अलावा अन्य कोई चारा नहीं रहा। ५ वर्ष तक सभी भेदभाव तथा दमन के बीच वह इस आशा से चुप रही कि जल्दी ही कश्मीर पर भारत का संविधान लागू हो जायेगा और भारतीय नागरिक के नाते उसे भी अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का उपयोग करने तथा अपने विकास की समान सुविधाएँ प्राप्त करने का अधिकार मिल जायेगा; लेकिन जुलाई समझौते ने उसकी इस आशा पर पानी फेर दिया। उसकी आँखों के आगे सन् १९४७ का भयावह इतिहास नाचने लगा। शेख अब्दुल्ला की हिन्दू–विरोधी नीति के कारण उसे अपने ही सामने एक नया पाकिस्तान बनते हुए दिखायी दिया। वह कमर बाँधकर प्रजापरिषद् के नेतृत्व में खड़ी हो गयी। अपने लिए नहीं, मातृभूमि की अखण्डता के लिए उसने शान्तिमय आन्दोलन छेड़ दिया।

उस देशभक्तिपूर्ण आन्दोलन को दबाने के लिए अब्दुल्ला सरकार ने पंजाब पुलिस की सहायता से जम्मू की जनता पर जो अमानुषिक अत्याचार ढाये, उनके दोहराने की आवश्यकता
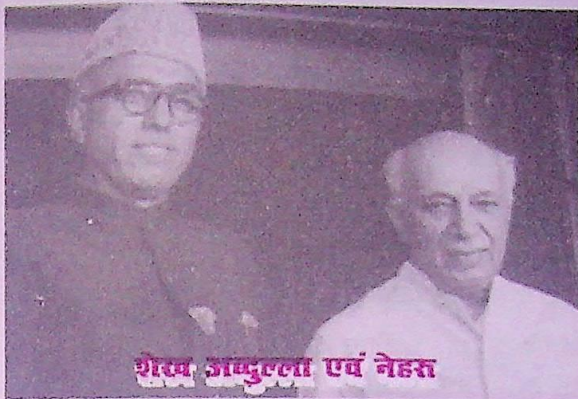
शेख अब्दुल्ला एवं नेहरू

गिरफ्तारी से पूर्व उन्होंने भारतीय जनता के नाम अपने सन्देश में कहा– "मैं जम्मू–कश्मीर में प्रविष्ट हो गया हूँ लेकिन एक कैदी की हैसियत से।" उनका यह सन्देश बिजली की भाँति सारे देश में फैल गया। कोने–कोने से सत्याग्रहियों के जत्थे अपने नेता के मार्ग पर निर्भय होकर पाँव पढ़ाते हुए विना परमिट जम्मू में प्रविष्ट होने लगे। डाक्टर साहब के एक ही हल्के पदाघात से सरकार द्वारा कश्मीर और भारत के बीच खड़ी की गयी परमिट की कृत्रिम दीवार ढहकर चूर–चूर हो गयी। साथ ही नेहरू जी के इस असत्य का भी पर्दाफाश हो गया कि कश्मीर सौ फीसदी भारत का अंग है।

नहीं। शहीदों का रक्त अभी गीला है और चिता की राख में चिनगारियाँ बाकी हैं। उजड़े हुए सुहाग और जंजीरों में जकड़ी हुई जवानियाँ उन अत्याचारों की गवाह हैं। (लेख १९५३ में लिखा गया था– सं.)

डॉ. मुखर्जी ने 'प्रजापरिषद्' तथा सरकार के बीच समझौता कराने की पूरी कोशिश की। इसके लिए नेहरू जी तथा शेख अब्दुल्ला से लम्बा पत्र–व्यवहार भी किया; किन्तु नेहरू जी के दुराग्रह ने उनके प्रयत्नों को पूर्ण विफल कर दिया। 'विना लड़े सुई की नोक के बराबर भी भूमि नहीं दूँगा'– यह गर्वघोषणा करनेवाले दुर्योधन की दुःखदायी स्मृति को सजीव करते हुए उन्होंने 'प्रजा परिषद्' से बात तक करने से इनकार कर दिया।

अब डॉ. मुखर्जी के सम्मुख संघर्ष का शंख फूँकने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प न रहा। समझौता न होने की दशा में जम्मू की जनता के समर्थन में शान्तिपूर्ण सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ देने के लिए वे वचनबद्ध थे। भारतीय जनसंघ के कानपुर अधिवेशन (१९५२) में स्वीकृत प्रस्ताव को अमल में लाने का अवसर आ चुका था। ५ मार्च को उन्होंने दिल्ली में अन्याय के विरुद्ध न्याय की स्थापना के लिए, तानाशाही के विरुद्ध लोकतन्त्र की विजय के लिए और विघटन के विरुद्ध राष्ट्रीय एकता के लिए, महात्मा गान्धी का नाम लेकर संघर्ष की घोषणा कर दी। समस्त देशवासियों को 'बलिदान के पथ पर' पाँव बढ़ाने के लिए ललकारते हुए उन्होंने कहा कि–

"हम सत्य के लिए संघर्ष छेड़ रहे हैं। न्याय की रक्षा के लिए बलि–पथ पर पाँव बढ़ा रहे हैं। अत्याचारों की अग्नि परीक्षा हमारे रूप को और भी निखार देगी। दमन का दमन हमारे माथे पर विजय का तिलक बनकर चमकेगा। बलिदानों के गौरवपूर्ण इतिहास में एक उज्ज्वल अध्याय और जुड़ जायेगा। आओ, इस इतिहास के निर्माण में हाथ बँटाने के लिए कमर कस कर मैदान में कूद पड़ें। सच्चे स्वराज्य तथा वास्तविक लोकतन्त्र की स्थापना का एकमेव यही मार्ग है। उसकी विजय निश्चित है।

६ मार्च को जम्मू के शहीदों की अस्थियों के जुलूस पर लगे प्रतिबन्ध को तोड़कर उन्होंने संघर्ष का श्रीगणेश कर दिया। स्वयं कारागार की ओर अग्रसर होकर अनुयायियों का मार्गदर्शन किया। उनकी गिरफ्तारी से सारे देश में तहलका मच गया। सबका ध्यान प्रजा परिषद् के आन्दोलन की ओर खिंच गया। देश में एक नयी चेतना जाग उठी।

सरकार की दमन–नीति के नीचे पिसती–कराहती जनता को आशा का एक सन्देश मिला। दिल्ली और पठानकोट में प्रजा परिषद् की माँगों के समर्थन में लाक्षणिक सत्याग्रह छिड़ गया। हजारों व्यक्ति घर–बार की चिन्ता छोड़कर राष्ट्रीय एकता के इस महान् अनुष्ठान में अपना योग देने के लिए डाक्टर साहब के चरण–चिह्नों का अनुसरण कर खुशी–खुशी जेल जाने लगे।

सरकार ने डाक्टर साहब को गिरफ्तार तो कर लिया; किन्तु वह अधिक दिन उन्हें जेल में न रख सकी। सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिल्ली सरकार के मुँह पर एक करारी चपत लगवाकर डाक्टर साहब अपने अन्य साथियों सहित जेल से बाहर आ गये। तानाशाही के गढ़ पर उनका यह प्रथम सफल प्रहार था, जिसने कांग्रेस सरकार को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के हनन के रूप में संसार के सम्मुख बेपर्दा खड़ा कर दिया।

जेल से बाहर आकर डाक्टर साहब ने आन्दोलन को उग्र बनाने के साथ–साथ सरकार के साथ समझौता करने का यत्न भी जारी रखा। लोकसभा में 'वित्त विनियोग विधेयक' पर भाषण करते हुए उन्होंने प्रधानमन्त्री से पुनः एक बार जम्मू की जनता की पुकार पर कान देने की प्रार्थना की। दिल्ली में सत्याग्रहियों के प्रति पुलिस द्वारा होनेवाले दुर्व्यवहार की ओर भी उन्होंने सरकार का ध्यान खींचा; पर नेहरू जी ने उनकी सभी अपीलों को ठुकरा दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने

डॉ. मुखर्जी की नीयत पर आक्षेप किया और तर्क का उत्तर तर्क से देने के बजाय अपशब्दों पर उतर आये। यद्यपि दिल्ली में उस समय हुए उपचुनावों में कांग्रेस की करारी हार तथा जनसंघ और हिन्दू सभा की शानदार जीत ने एक बार फिर यह बता दिया था कि जम्मू–आन्दोलन को जनता का समर्थन प्राप्त है; किन्तु फिर भी नेहरू जी जनमत को अनसुना कर अपने हठ पर अड़े रहे। इस स्थिति में डाक्टर साहब ने आन्दोलन को अधिकाधिक तीव्र करने में ही समस्या के समुचित समाधान की सम्भावना देखी। अतः उन्होंने देश के भिन्न–भिन्न भागों का दौरा कर जम्मू आन्दोलन के वास्तविक उद्देश्यों को जनता के सामने रखा। सर्वत्र कार्यकर्त्ताओं से प्रत्यक्ष बातचीत करके उन्होंने आन्दोलन के प्रति जनता के रुख का पता लगाया। इन दौरों से उनकी यह धारणा दृढ़ हो गयी कि सारा देश कश्मीर के अविलम्ब भारत के अविभाज्य अंग के रूप में देखने के लिए उत्सुक है और वह जम्मू आन्दोलन की सफलता चाहता है।

आन्दोलन को जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त है, यह विश्वास कर लेने के बाद डाक्टर साहब ने नेहरू जी के इस कथन को कसौटी पर कसने का निश्चय किया कि 'जम्मू–कश्मीर सौ फीसदी भारत का अंग है।' इसके लिए उन्होंने विना परमिट जम्मू जाने का संकल्प किया। ६ मई को दिल्ली से पंजाब के दो दिन के दौरे पर रवाना होते समय उन्होंने वक्तव्य में कहा कि जम्मू जाने में उनका उद्देश्य किसी प्रकार की अशान्ति को बढ़ावा देना नहीं, बल्कि गतिरोध को शान्तिपूर्ण एवं सम्मानजनक रीति से हल करने के लिए एक और प्रयत्न करना है। परमिट न लेने के निश्चय को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि भारतीय नागरिक के नाते देश के किसी भी भाग में जाने का उन्हें पूर्ण अधिकार है और चूँकि नेहरू जी आये दिन कहते रहते हैं कि जम्मू और कश्मीर राज्य भारत में सौ फीसदी शामिल हो चुका है, अतः उन्होंने विना परमिट के वहाँ जाने का फैसला किया है।

डाक्टर साहब के इस कदम की सारे देश में जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई। दिल्ली से पठानकोट तक हर स्टेशन पर हजारों नर–नारियों ने, 'परमिट सिस्टम तोड़ दो' के गगनभेदी नारों से उनका स्वागत किया और 'कहाँ मिलेंगे– जम्मू में' का घोष कर उनको अपने समर्थन का विश्वास दिलाया। अनुमान था कि डाक्टर साहब को पठानकोट पहुँचने से पहले ही कहीं गिरफ्तार कर लिया जायेगा; लेकिन सुप्रीम कोर्ट के डर से सरकार ने न केवल उन्हें पठानकोट तक जाने दिया; बल्कि विना परमिट जम्मू में प्रविष्ट होने पर भी अपनी ओर से कोई कार्रवाई न करने का आश्वासन दिया।

गुरुदासपुर जिले के डिप्टी कमिश्नर श्री वसिष्ठ ने पठानकोट में डाक्टर साहब को बताया कि वे अपनी पार्टी के साथ विना परमिट जम्मू जा सकते हैं; भारत सरकार उनके मार्ग में कोई बाधा खड़ी नहीं करेगी। उन्होंने यह भी बताया कि जम्मू में बख्शी गुलाम मोहम्मद डाक्टर साहब से भेंट करेंगे; लेकिन जब वे अपने साथियों सहित भारत की सीमा को पार कर जम्मू की सीमा में स्थित रावी के पुल पर पहुँचे, तो कश्मीर मिलिशिया उनका रास्ता रोक कर खड़ी हो गयी। वहाँ कठुआ के पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट ने उन्हें राज्य की सीमा में न घुसने का आदेश दिया। डाक्टर साहब ने इसे मानने से इनकार कर दिया, जिस पर उन्हें कश्मीर सुरक्षा विधान के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया गया।

गिरफ्तारी से पूर्व उन्होंने भारतीय जनता के नाम अपने सन्देश में कहा– "मैं जम्मू–कश्मीर में प्रविष्ट हो गया हूँ, लेकिन एक कैदी की हैसियत से।" उनका यह सन्देश बिजली की भाँति सारे देश में फैल गया। कोने–कोने से सत्याग्रहियों के जत्थे अपने नेता के मार्ग पर निर्भय होकर पाँव पढ़ाते हुए विना परमिट जम्मू में प्रविष्ट होने लगे। डाक्टर साहब के एक ही हल्के पदाघात से सरकार द्वारा कश्मीर और भारत के बीच खड़ी की गयी परमिट की कृत्रिम दीवार ढहकर चूर–चूर हो गयी। साथ ही नेहरू जी के इस असत्य का भी पर्दाफाश हो गया कि कश्मीर सौ फीसदी भारत का अंग है।

२३ जून '५३ की वह रात

गिरफ्तारी के बाद डाक्टर साहब को श्रीनगर ले जाया गया, जहाँ नजरबन्दी की अवस्था में गिरफ्तारी के ४३वें दिन २३ जून की रात को बड़े रहस्यमय ढंग से उन्हें मृत घोषित कर दिया गया।

किन्तु वे मरे नहीं, विभाजित भारत की अवशिष्ट एकता को बनाये रखने के लिए राष्ट्र की वेदी पर सर्वस्व की बलि चढ़ाकर अमर हो गये। औरों को बलिदान के पथ पर आने का आह्वान करते–करते स्वयं बलि हो गये। ध्येय की सिद्धि के लिए अपने अनमोल जीवन को निछावर कर गये। विघटनकारी मनोवृत्तियों से लोहा लेते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। भारतमाता के मस्तक को कश्मीर के किरीट से मण्डित रखने के लिए अपने प्राणों पर खेल गये। लोकतन्त्र की रक्षा के लिए नींव के पत्थर बन गये। तानाशाही के शिकार हो गये। अन्धकार की शक्तियों से संघर्ष करते–करते अनन्त ज्योति में विलीन हो गये। अपने धर्म का पालन करते हुए कर्मभूमि में सो गये।

□
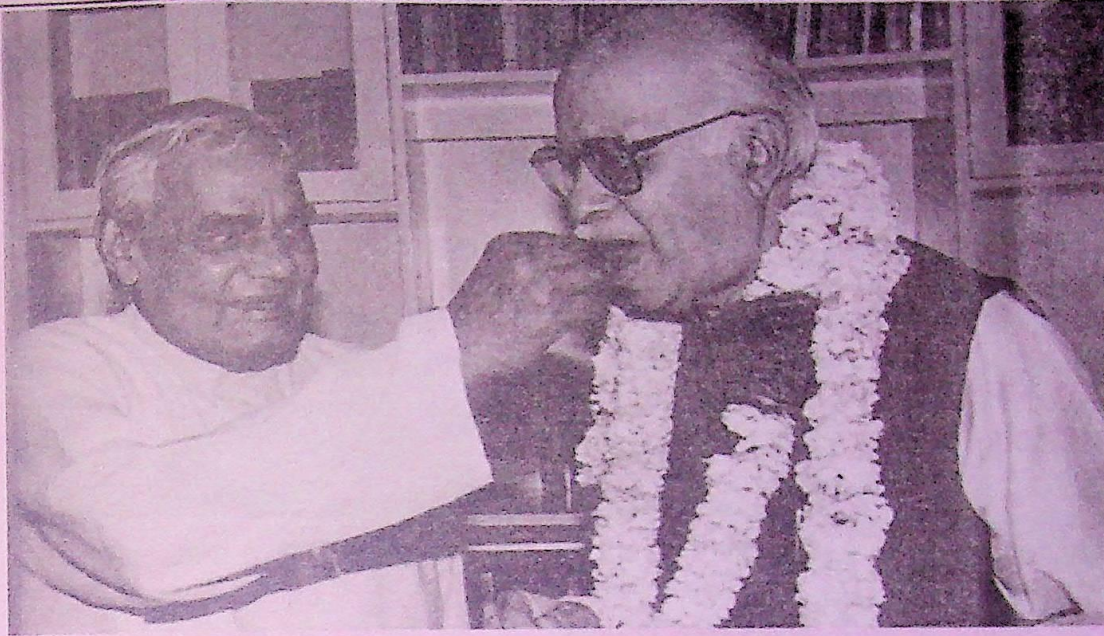
दो विचारशील व्यक्तियों में, कुछ मामलों में, यदाकदा मतभेद होना अस्वाभाविक नहीं है।

आडवाणी जी और मेरे मतभेद तो हैं

— क्या राम जन्मभूमि के प्रश्न पर आपके और आडवाणी जी के बीच में मतभेद हैं ?

मतभेदों की चर्चा ज्यादा है।

— मतलब कुछ मतभेद जरूर हैं ?

दो विचारशील व्यक्तियों में, कुछ मामलों में, यदाकदा मतभेद होना अस्वाभाविक नहीं है।

— आप रामरथ पर दिखायी नहीं दिये ?

वह रामरथ नहीं था। 'विरथ रघुवीरा'— ऐसा वर्णन है। जब आडवाणी जी ने पदयात्रा का विचार छोड़ दिया और तीव्र गति के वाहन से जाना तय किया, तो उस वाहन को रथ का नाम दिया गया। चुनाव में इस तरह के अनेक रथ चल चुके हैं। जहाँ तक मेरे रथारूढ़ होने का प्रश्न है, उस भीड़भाड़ में मैं कहाँ जाता!

— एक अंग्रेजी दैनिक में एक महिला पत्रकार ने लिखा है कि पार्टी ने रथयात्रा का निर्णय आडवाणी जी पर थोपा। यह कहाँ तक सही है ?

यह गलत है। रथयात्रा का निर्णय आडवाणी जी का अपना था।

— क्या आपके साथ विचार–विमर्श हुआ था ?

हाँ; उन्होंने टेलीफोन पर चर्चा की थी।

— आपकी प्रतिक्रिया ?

प्रारम्भिक प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं थी। मन्दिर निर्माण के आन्दोलन के साथ एक राजनीतिक दल का पूरी तरह जुड़ना मुझे पसन्द नहीं था।

— फिर आपने उसका समर्थन क्यों किया ?

आडवाणी जी ने कहा कि यात्रा से अयोध्या विवाद के बारे में भाजपा के दृष्टिकोण को लोगों के सामने रखने का अवसर मिलेगा, वे इस बात से सहमत थे कि सारे प्रश्न को हिन्दू–मुस्लिम प्रश्न के रूप में नहीं रखा जाना चाहिए, आम मुसलमान को भाजपा के दृष्टिकोण से परिचित और सहमत कराने की आवश्यकता पर भी एक राय थी।

— आम चुनाव में भाजपा ने जन्मस्थान पर मन्दिर बनाने के प्रश्न को मुख्य मुद्दा नहीं बनाया था। यहाँ तक कि चुनाव घोषणापत्र में केवल प्रस्तावना में उसका उल्लेख था। कलकत्ता की राष्ट्रीय कार्यसमिति की बैठक में भी यही कहा गया था कि भाजपा के सदस्य व्यक्तिगत हैसियत से मन्दिर आन्दोलन में भाग लेंगे। फिर अचानक यह परिवर्त्तन कैसे हुआ ?

चुनाव के पूर्व पालनपुर में राष्ट्रीय कार्यसमिति की जो बैठक हुई थी, उसमें मन्दिर निर्माण के बारे में एक प्रस्ताव पास हुआ था, उसमें कहा गया था कि अयोध्या में मन्दिर बनना चाहिए।

— लेकिन मुसलमान मस्जिद को अन्यत्र ले जाने के लिए तैयार नहीं हैं। फिर वहाँ मन्दिर बनेगा कैसे ?

मुसलमानों को समझाने–बुझाने का प्रयास ही कहाँ हुआ ? जब बातें होती हैं, मुस्लिम नताओं से होती हैं। उनके अपने स्वार्थ हैं।

— क्या हिन्दू नेताओं के स्वार्थ नहीं हैं ?

रामभक्त साधु–सन्तों के क्या स्वार्थ हो सकते हैं ?

— एक कैसेट की धूम मची है,

यह १८ अक्टूबर की बात है। आडवाणी जी उस दिन दिल्ली में ही थे। उन्हें दूसरे दिन यात्रा पर जाना था। ३० अक्टूबर की तारीख निकट आ रही थी। गतिरोध जारी था। यदि आडवाणी जी को गिरफ्तार किया गया और कारसेवा रोकी गयी, तो भाजपा अपना समर्थन वापस लेने के लिए वचनबद्ध थी। संकट को टालने के विविध प्रयत्न हो रहे थे।

जिसमें दिये भाषण में कहा गया है कि उद्देश्य मन्दिर के निर्माण का उतना नहीं, जितना लालकिले पर भगवा झण्डा फहराने का है ?

मैंने वह कैसेट नहीं सुना। जोश में अनेक बातें कह दी जाती हैं, सबको गम्भीरता से नहीं लेना चाहिए। दिल्ली में जब भी किसी कम्युनिस्ट रैली का आयोजन होता है, एक नारा जो बहुत सुनायी देता है– "माँग रहा है हिन्दुस्तान, लालकिले पर लाल निशान !" अब इसका यह अर्थ निकालना कि कम्युनिस्ट तिरंगे को स्वीकार नहीं करते, गलत होगा।

– क्या आपका ख्याल है कि अगर मुसलमानों को समझाने–बुझाने का प्रयास किया जाये, तो वे मान जायेंगे ?

हाँ; मैं ऐसा समझता हूँ। आम मुसलमान को समझाने का अब तक कोई ठोस प्रयास नहीं हुआ। न मुस्लिम धार्मिक नेताओं से ही पूर्वग्रहों से ऊपर उठकर बात हुई है।

– क्या समझाना चाहते हैं आप ?

आम मुसलमान को यह समझाने की जरूरत है कि जिसे वह बाबरी मस्जिद के नाम से जानता है, वह ऐसा ढाँचा है, जो पुराने मन्दिर को तोड़कर बनाया गया था। यह भी कि यह एक साधारण मन्दिर के निर्माण का मामला नहीं है। देश में लाखों राम मन्दिर हैं; किन्तु देश में अयोध्या एक ही है। उस अयोध्या में राम जन्मस्थान के रूप में विख्यात स्थान भी एक ही है। उस स्थान पर मन्दिर बनाने और उसे तोड़ने की कहानी एक कील की तरह हिन्दू मानस को सैकड़ों सालों से लहूलुहान कर रही है।

मुसलमानों को छोड़िये, बहुत से हिन्दू यह नहीं जानते कि बाबरी मस्जिद में जो खम्भे लगे हैं, उन पर हिन्दू प्रतीक चिह्न बने हैं। क्या किसी मस्जिद में वराह (सुअर) की छवि अंकित होने की कल्पना भी की जा सकती है ? खम्भों पर कलश है, कमल हैं, जो बताते हैं कि किसी मन्दिर को तोड़कर बाबरी मस्जिद का निर्माण हुआ था। यदि ये तथ्य मुसलमानों के सामने सद्भावना के वातावरण में रखे जायें, तो उनका दृष्टिकोण बदल सकता है।

– तो आप मानते हैं कि वहाँ बाबरी मस्जिद है ! कुछ लोग तो सारा विवाद एक मन्दिर और एक अमस्जिद के बीच मानते हैं ?

किसी के मानने या न मानने का सवाल नहीं है। तथ्यों को न मानने से वे अस्तित्वहीन नहीं हो जाते ! तथ्य यह है कि वहाँ एक मन्दिर था, जिसके स्थान पर एक मस्जिद बनायी गयी और अब उस पर विवाद है।

– लेकिन मन्दिर में पूजा होती है और मस्जिद में बरसों से नमाज नहीं हुई ?

यह सच है, और यह भी सच है कि पूजा का होना और नमाज का न होना अदालत के फैसले से सम्बन्धित है।

– क्या इसका अर्थ यह नहीं निकाला जा सकता है कि वहाँ मस्जिद है ही नहीं ?

तो फिर विवाद किस बात का है ? फिर किसे हटाने की बात है ? नमाज नहीं होती, यह कहने का अर्थ ही यह है कि पहले कभी नमाज होती थी। इसी प्रकार कोर्ट की स्वीकृति से पूजा होती है, इसका अर्थ भी यह है कि पूजा होने पर विवाद था और बीच में ऐसा लम्बा कालखण्ड आया था, जब वहाँ न मूर्त्तियाँ थीं और न पूजा होती थी।

– जनता दल के अध्यक्ष बोम्मई ने आप पर आरोप लगाया है कि पूर्व प्रधानमन्त्री विश्वनाथ प्रताप सिंह से यह वादा करने के बाद कि आप अयोध्या के मामले में केन्द्र सरकार द्वारा एकतरफा जारी अध्यादेश का समर्थन करेंगे, आप उससे मुकर गये या अपनी पार्टी से उसे नहीं मनवा पाये। आपको इस बारे में क्या कहना है ?

बड़ा अच्छा हुआ आपने यह सवाल

पूछ लिया। जब मैं न्यूयार्क में था, तब इस आशय के बयान मैंने भी अखबारों में पढ़े थे। बोम्मई जी को या तो तथ्यों की पूरी जानकारी नहीं है या वे जानबूझकर वी.पी. सरकार की विफलता पर पर्दा डालने का प्रयास कर रहे हैं।

यह १८ अक्टूबर की बात है। आडवाणी जी उस दिन दिल्ली में ही थे। उन्हें दूसरे दिन यात्रा पर जाना था। ३० अक्टूबर की तारीख निकट आ रही थी। गतिरोध जारी था। यदि आडवाणी जी को गिरफ्तार किया गया और कारसेवा रोकी गयी, तो भाजपा अपना समर्थन वापस लेने के लिए वचनबद्ध थी। संकट को टालने के विविध प्रयत्न हो रहे थे।

राष्ट्रीय मोर्चा के अध्यक्ष रामराव जी उन दिनों अस्पताल में थे। सारी स्थिति से उनका चिन्तित होना स्वाभाविक था। उन्होंने उस दिन प्रातःकाल तेलुगुदेशम के राज्यसभा सदस्य पद्मनाभन को मेरे पास भेजा। रामराव जी की इच्छा थी कि मैं उन्हें अस्पताल में मिलूँ। मैं तैयार हो गया। व्यस्तता के कारण मैं उन्हें देखने नहीं जा सका था।

संयोग से जब पद्मनाभन कुछ मित्रों के साथ मुझसे मिलने आये, तो मेरे पास राजस्थान के मुख्यमन्त्री शेखावत और लोकसभा सदस्य जसवन्त सिंह बैठे थे। मैंने उनसे भी चलने के लिए कहा।

हमने रामराव जी को गहरी मानसिक बेचैनी से पीड़ित पाया। उन्होंने कांग्रेस विरोधी मोर्चा बनाने में अनथक प्रयास किया था, किन्तु आज सब कुछ ढहता दिखायी दे रहा था। लम्बी बातचीत में अयोध्या प्रश्न के सभी पहलुओं पर चर्चा हुई। बातचीत के दौरान यह सुझाव आया कि केन्द्र सरकार को कोई साहसिक पहल करके गुत्थी सुलझानी चाहिए। वह पहले क्या हो, इस सम्बन्ध में एक त्रिसूत्र तैयार हुआ।

१. विवादग्रस्त ढाँचे को छोड़कर सारी जमीन सरकार अधिगृहीत कर ले और उसे श्रीराम जन्मभूमि ट्रस्ट या समिति को सौंप दे।

२. जहाँ गत वर्ष शिलान्यास हुआ था, वहाँ से कारसेवा आरम्भ करने की अनुमति दी जाये।

३. केन्द्र सरकार संविधान के अनुच्छेद १४३ के अन्तर्गत, उच्चतम न्यायालय की इस सवाल पर राय ले कि क्या राम जन्मस्थान पर पहले कोई मन्दिर था, जिसे तोड़कर बाबरी मस्जिद का निर्माण हुआ है ?

रामराव जी इस त्रिसूत्र से सहमत थे। उन्होंने वी.पी. सिंह से बातचीत करने का आश्वासन दिया। हमारे लिए आडवाणी जी से सलाह करना जरूरी था। भैरों सिंह, जसवन्त सिंह और मैं पण्डारा रोड स्थित उनके निवास पर गये। आडवाणी जी की प्रतिक्रिया अनुकूल थी। यह तय हुआ कि त्रिसूत्र के आधार पर हल निकाला जाये। विश्व हिन्दू परिषद् से विचार विनिमय करना था। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के झण्डेवालान कार्यालय पर चर्चा हुई, जिसमें संघ, विहिप और भाजपा के मूर्द्धन्य नेता उपस्थित थे। विहिप के प्रतिनिधि ने त्रिसूत्र के प्रति उत्साह प्रकट नहीं किया। उन्हें भय था कि यह सारे मामले को फिर से बट्टे खाते में डालने की चाल है।

किन्तु सरकार ने जो अध्यादेश जारी किया, वह त्रिसूत्र से मूल रूप से भिन्न था। भूमि का अधिग्रहण तो किया गया था; किन्तु विवादग्रस्त ढाँचे के अलावा सारी भूमि को न्यास/समिति को सौंपने का सुझाव अमान्य कर दिया गया था। मामला सर्वोच्च न्यायालय को सौंपने की बात तो थी; किन्तु उसे 'क्या मन्दिर को तोड़ कर मस्जिद बनायी गयी थी ?' इस मुद्दे तक सीमित रखने का कोई उल्लेख नहीं था। सबसे आपत्तिजनक बात यह थी कि जहाँ गत वर्ष, चुनाव के पूर्व शिलान्यास हुआ था, उस स्थल को भी विवादग्रस्त घोषित कर दिया गया था और मन्दिर निर्माण के लिए शिलान्यास के स्थान से दूर जमीन देने का प्रस्ताव किया गया था।

स्वभावतः विहिप को ऐसा कोई सुझाव मान्य नहीं हो सकता था, जिसमें शिलान्यास के स्थल से हट कर मन्दिर बनाने की बात हो। विवादग्रस्त ढाँचे के अतिरिक्त सरकार ने अन्य जमीन ले तो ली; किन्तु रामराव जी के साथ तैयार हुए फार्मूले के अनुसार उसे समिति को सौंपने का ऐलान नहीं किया। उस अध्यादेश में और भी खामियाँ दिखायी दीं; किन्तु भाजपा की प्रतिक्रिया अनुकूल थी। आडवाणी जी ने अध्यादेश को 'एक कदम आगे' कहा, मैंने उसे सही दिशा में; किन्तु देर से उठाया एक कदम बता कर, उसका स्वागत किया; लेकिन मैंने यह भी कहा था कि सरकार को शिलान्यास के स्थल से कारसेवा आरम्भ करने की अनुमति देने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए, यदि अदालत के किसी फैसले से उस स्थल को विवादग्रस्त घोषित कर दिया गया है, तो उसका भी कोई कानूनी हल निकाला जा सकता है; किन्तु कारसेवा वहीं से आरम्भ होनी चाहिए।

लेकिन सरकार ने अध्यादेश में संशोधन करने के बजाय उसे रद्द करने के लिए दूसरा अध्यादेश निकाल दिया। २४ घण्टे के भीतर अध्यादेश का जारी होना और वापस लिया जाना एक अनहोनी घटना थी। इससे राष्ट्रपति की प्रतिष्ठा को भी धक्का लगा। जब मैंने विश्वनाथ प्रताप सिंह से पूछा कि ऐसा क्यों हुआ, तो उन्होंने फोन पर

बताया कि अयोध्या विवाद में शामिल दोनों ही पक्ष पहले अध्यादेश का कड़ा विरोध कर रहे हैं। बाबरी मस्जिद ऐक्शन कमेटी का आरोप था कि यदि सरकार ने दबाव में आकर समूचे विवादास्पद ढाँचे को विहिप को सौंपने का फैसला कर लिया, तो वह क्या करेगी ! उधर विहिप का आरोप था कि चूँकि अब हाईकोर्ट का आदेश रद्द हो गया है, जिसके अन्तर्गत वहाँ पूजा होती थी, इसलिए सरकार किसी भी दिन मूर्त्तियाँ हटाकर, वहाँ नमाज पढ़वा सकती है।

मैं उस रात कलकत्ता में था। एक संसदीय समिति की बैठक में भाग लेने के लिए गया था। मैंने इस आशा के साथ दिल्ली छोड़ी थी कि गुत्थी सुलझ जायेगी और भाजपा को समर्थन वापस लेने की नौबत नहीं आयेगी; किन्तु बातचीत टूट गयी।

– किन्तु बोम्मई साहब तो उसके लिए आपको दोषी ठहराते हैं ?

दोषी तो हम सब हैं। सबसे अधिक दोषी सरकार है। उसने त्रिसूत्र को ज्यों–का–त्यों स्वीकार नहीं किया। शिलान्यास स्थल को विवादग्रस्त घोषित कर उसने अपने इरादे के बारे में ही सन्देह पैदा कर दिया। विहिप को लगा कि उसके साथ छल किया जा रहा है, बाबरी मस्जिद पक्षधरों को लगा कि उन्हें एक साजिश का शिकार बनाया जा रहा है। इस प्रकार सरकार अविश्वास के दो पाटों में पिस गयी।

– कुल मिलाकर सरकार तो ठीक चल रही थी। क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि समर्थन वापस लेने का फैसला जल्दी में किया गया ?

नहीं, मुझे ऐसा नहीं लगता। विहिप के लिए मन्दिर का निर्माण सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा था। विहिप ने प्रधानमन्त्री के अनुरोध पर सरकार को चार महीने का समय भी दिया था; किन्तु दस महीने बीत जाने पर भी कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया। न अदालत में दिन–प्रतिदिन सुनवाई कराके मामले को निबटाने की कोशिश की गयी, न अदालत के बाहर बातचीत द्वारा हल निकालने का कोई गम्भीर प्रयास हुआ और मामलों की तरह इस मामले में भी ढिलाई दिखायी गयी। इस बीच वोट–बैंक में ज्यादा पूँजी जमा करने का काम चलता रहा। १५ अगस्त को लालकिले से पैगम्बर साहब के जन्मदिन पर छुट्टी करने के ऐलान की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। विहिप अपना धैर्य खो बैठी। उसने मन्दिर निर्माण का वचन दिया था। प्रधानमन्त्री ने अपनी पार्टी के चुनावी वादों को पूरा करने की दिशा में जितनी जल्दबाजी दिखायी, यदि उसका दसवाँ हिस्सा भी अयोध्या–विवाद को सुलझाने में लगाते, तो शायद बात न बिगड़ती।

जहाँ तक समर्थन वापस लेने में जल्दबाजी का सवाल है, आडवाणी जी की गिरफ्तारी का कोई औचित्य नहीं था। उनकी यात्रा के दौरान कहीं कोई उपद्रव नहीं हुआ। हाँ; जो जनसमर्थन मिला, उससे आतंकित होकर सरकार ने गिरफ्तारी का फैसला किया हो, तो बात अलग है। अयोध्या में ३० अक्टूबर को आडवाणी जी की उपस्थिति शान्ति बनाये रखने में सहायक होती; किन्तु ऐसा लगता है कि विश्वनाथ प्रताप सिंह और मुलायम सिंह के द्वन्द्व ने सारा काम बिगाड़ दिया। भाजपा के सामने समर्थन वापस लेने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा।

– क्या यह सच है कि यदि मण्डल न होता, तो मन्दिर भी न होता ?

नहीं, मामला इतना सरल नहीं है। मण्डल चुनाव घोषणा पत्र के अनेक वादों में से एक वादा था, जिसे पूरा करने की अवधि ५ वर्ष की थी। इसके विपरीत मन्दिर धार्मिक भावनाओं से गहराई से जुड़ा एक ऐसा तथ्य था, जो भावभूमि से उतरकर, अयोध्या की भूमि पर शिलान्यास के रूप में ठोस रूप ले चुका था। मण्डल टाला जा सकता था, मन्दिर नहीं। हुआ इसका उलटा। फलतः सब कुछ उलटा हो गया।

– आपने कहीं कहा था कि यदि मण्डल न होता, तो हमारे हाथ में कमण्डल भी न होता। मतलब यह कि आप समर्थन वापस न लेते ?

उन दिनों मजाक में अनेक बातें कही जाती थीं। किसी अखबार में इस आशय का कार्टून जरूर छपा था; किन्तु यह सच है कि मोहभंग की जो प्रक्रिया पहले ही प्रारम्भ हो चुकी थी, उसे मण्डल के सवाल पर वी.पी. सिंह के हठवादी रुख ने बहुत तेज कर दिया। फिर भी यदि आडवाणी जी को गिरफ्तार न किया जाता, तो समर्थन वापस न होता।

– अगले चुनाव में क्या होगा ?

शायद ही किसी दल को बहुमत मिले। फिर मिलीजुली सरकार बनानी पड़ सकती है। समस्याएँ इतनी जटिल और गम्भीर हैं कि उनका हल निकालने के लिए मिलकर काम करने के अलावा कोई चारा नहीं है। यदि किसी एक दल को बहुमत मिल भी जाये, तब भी ज्वलन्त राष्ट्रीय प्रश्नों पर सबके सहयोग की आवश्यकता बनी रहेगी।

राजनीतिक क्षेत्र में बढ़ती असहिष्णुता हमारे लोकतान्त्रिक ताने–बाने को ही क्षतिग्रस्त कर रही है। स्वस्थ लोकतन्त्र वही है, जिसमें बिना घृणा के विरोध हो सकता है और बिना हिंसा के सरकार बदल सकती है। □

– 'धर्मयुग' से साभार

यह साक्षात्कार 'धर्मयुग' के तत्कालीन सम्पादक गणेश मन्त्री ने लिया था। शीर्षक उनकी समाजवादी मानसिकता को उद्घाटित करता है। – सम्पादक

– डॉ. भगवानस्वरूप चैतन्य

...और एक दिन वह दिव्य विभूति मेरे सामने थी
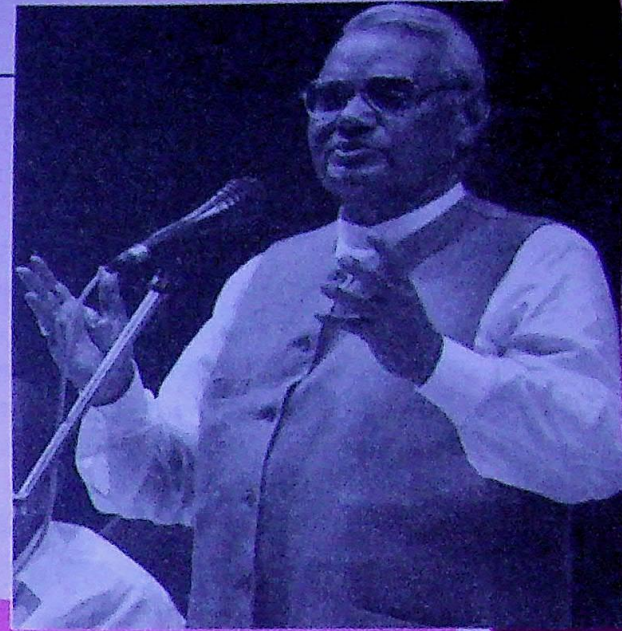
ऐतिहासिक मञ्च पर अटलजी के अनेक बार भाषण हुए हैं। अटलजी की वक्तृत्व–कला के ग्वालियर में मुझ जैसे लाखों दीवाने आज भी हैं। वैसे अब तो सारा देश ही नहीं, सारा विश्व भी उनकी इस भाषण देने की अद्भुत एवं दिव्य कला का दीवाना हो चुका है। ग्वालियर में जब भी ताँगे में लाउडस्पीकर लगाकर अटल जी के आगमन एवं भाषण की घोषणा की जाती, मैं मञ्च के सामने बिछी दरी पर अग्रिम पंक्ति में हमेशा उपस्थित रहता।

कविवर अटल बिहारी वाजपेयी उन गिने–चुने राजनेताओं में से एक हैं, जो राजनीति में रहकर भी अपने साहित्य चिन्तन और व्यक्तित्व के साथ एक सन्तुलन बिठा पाने में कामयाब रहे हैं। ग्वालियरी होने के नाते उन्हें करीब से देखने व सुनने का सौभाग्य मुझ अकिञ्चन को भी मिला है। मेरी स्मृतियों में उनके कई रोचक संस्मरण हैं।

कोई आठ–दस वर्ष का होऊँगा। ग्वालियर शहर में महाराज बाड़े के समीप माधौगञ्ज में श्रीराम धर्मशाला के पीछे तम्बाकूवालों की एक गोशाला के एक खाली पड़े हॉल में बुजुर्गों के बीच साहित्य और राजनीति पर बहसें हुआ करती थीं। श्री मायाशंकर वर्मा (पत्रकार) सम्पादक दैनिक मध्य भारत प्रकाश, श्री कुँवर सिंह (सम्पादक भारत भूमि) श्री झम्मनलाल शर्मा (सं. हमारी आवाज) तथा मेरे स्व. पिता पं. गुलाबचन्द शर्मा (पण्डित जी) स्व. श्री रामसेवक आजाद (मामा) स्व. श्री बाबू वृंदा सहाय (स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी एवं लोकप्रिय राजनेता) आदि जब कभी चाय के बहाने एकत्र होते, तो ज्वलन्त विषयों पर बड़ी सारगर्भित बातें सुनने को मिलती थीं। महाराज बाड़े की राजनीतिक आम सभाओं में किसी महान् नेता के भाषणों की समीक्षा के सन्दर्भ में ये अनौपचारिक परिचर्चाएँ घर में संलग्न गोशाला के रिक्त हॉल वाली बैठक में मुझे अक्सर सुनने को मिला करती थीं। मैं उनमें गहरी रुचि लेता था। इन्हीं चर्चा परिचर्चाओं के दौरान मैंने सुना कि जब एक मित्र ने अटल जी के पूज्य पिताजी से उनके बेटों के नाम जानने चाहे, तो उन्होंने बड़े ही काव्यात्मक लहजे में उत्तर दिया– "धरा पर कभी युद्ध नहीं हो ! सदा प्रेम अटल रहे !" अवध–बिहारी, फिर क्रमशः सदाबिहारी, प्रेम बिहारी एवं अटल बिहारी वाजपेयी। अटल जी चार भाइयों में सबसे छोटे हैं। मेरे घर के समीप ही महाराज बाड़े की विक्टोरिया मार्केट के घण्टाघर के नीचे प्रायः एक विशाल मञ्च बनाया जाता था और इस मञ्च पर पं. व्रजनारायण व्रजेश (ग्वालियर के हिन्दू महासभाई पूर्व सांसद), गंगाधर राव दंडवते, डॉ. द.स. परचुरे, बाबू वृंदा सहाय, प्रेमचन्द कश्यप, किशनचन्द ऐरन, प्रो. बलराज मधोक, जार्ज फर्नांडीज, बाबू जगजीवनराम, कामराज, श्रीमती इन्दिरा गान्धी जैसे बड़े–बड़े नेताओं के भाषण प्रायः हुआ करते थे। लाखों श्रोताओं को शान्तिपूर्वक भाषण सुनते यहाँ आज भी देखा जा सकता है। धैर्यवान् श्रोताओं के लिए भी ग्वालियर शहर प्रसिद्ध है।

इसी ऐतिहासिक मञ्च पर अटलजी के अनेक बार भाषण हुए हैं। अटलजी की वक्तृत्व–कला के ग्वालियर में मुझ जैसे लाखों दीवाने आज भी हैं। वैसे

अब तो सारा देश ही नहीं, सारा विश्व भी उनकी इस भाषण देने की अद्भुत एवं दिव्य कला का दीवाना हो चुका है। ग्वालियर में जब भी ताँगे में लाउडस्पीकर लगाकर अटल जी के आगमन एवं भाषण की घोषणा की जाती, मैं मञ्च के सामने बिछी दरी पर अग्रिम पंक्ति में हमेशा उपस्थित रहता। दरी पर इत्मीनान से पद्मासन लगाकर बैठता और आरम्भ से अन्त तक अटलजी का पूरा भाषण सुनकर ही घर लौटता। हास्य–व्यंग्य की मधुर और चटपटी भाषा में वे अपने वक्तव्य को चाहे जितना रोचक बना देते थे, पर एक सन्देश सदा ही छिपा रहता था, उनके उद्‌बोधन में।

बचपन की बात है। एक बार जब मैंने अटल जी की लच्छेदार भाषा में काव्यमय भाषण सुना, तो जोर–जोर से अपने बाल सखाओं के साथ उनकी प्रशंसा में 'जिन्दाबाद' के नारे लगाना शुरू कर दिये। अटल जी ने अचानक मञ्च से उतरकर अपने गले की माला मेरे गले में डाल दी और धीरे से कहा– भाई ! अब शान्त भी हो जाओ। अभी मुझे आगे और बोलना है। उन दिनों ग्वालियर में अटलजी की मित्र मण्डली में नेता कम और साहित्यकार ही ज्यादा हुआ करते थे। अटल जी मूलतः कवि हैं, इसलिए उनके व्यवहार में घुटे हुए राजनीतिज्ञों की–सी वक्रता का अभाव है। वैसे स्वभाव से वे धीर, वीर, निर्भीक, होने के साथ–साथ अत्यन्त संवेदनशील कवि हृदय हैं।

ग्वालियर में वीर सावरकर सरोवर के समीप, पुराने विक्टोरिया कॉलेज (अब महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय) के विशाल प्रांगण में, कालेज के वार्षिक उत्सव में हर वर्ष एक विराट् अखिल भारतीय कवि सम्मेलन हुआ करता था। अटलजी ने पूर्व में इसी कालेज से शिक्षा प्राप्त की थी। अपने ही महाविद्यालय के इस राष्ट्रीय कविता मञ्च पर अटल जी ने डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन, डॉ. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, वीरेन्द्र मिश्र, रामकुमार चतुर्वेदी, चंचल, हरिवंशराय बच्चन, महादेवी वर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', देवराज दिनेश, रामधारी सिंह 'दिनकर', शान्तिस्वरूप चाचा, मुकुट बिहारी सरोज, पं. आनन्द मिश्र, पं. भवानी प्रसाद मिश्र, गोपालदास नीरज और काका हाथरसी जैसे महान् एवं लोकप्रिय कवियों के साथ सफल काव्य पाठ किया है। अटल जी की कहन, काव्य प्रस्तुति एवं शैली ही कुछ ऐसी है कि श्रोता मन्त्रमुग्ध हुए विना नहीं रहते।

ग्वालियर नगर में लश्कर ही मुख्य शहर है। लश्कर का अर्थ फौज होता है। लश्कर में शिन्दे की छावनी है। यहीं कमल सिंह का बाग नामक एक प्राचीन मोहल्ला है, जहाँ अटल जी का आज भी पुराना मकान है। अब वहाँ अटल जी के पूज्य पिता स्वर्गीय कविवर पं. कृष्ण बिहारी वाजपेयी जी की स्मृति में एक सुन्दर पुस्तकालय की स्थापना कर दी गयी है।

□

– शर्मा एम्पायर, पं. गुलाब मार्केट, श्रीराम धर्मशाला लेन, माधोगंज, ग्वालियर

स्वतन्त्रता दिवस की पुकार

– अटल बिहारी वाजपेयी

पन्द्रह अगस्त का दिन कहता, आजादी अभी अधूरी है।
सपने सच होने बाकी हैं, रावी की शपथ न पूरी है।।
जिनकी लाशों पर पग धर कर, आजादी भारत में आयी।
वे अब तक हैं खानाबदोश, गम की काली बदली छायी।।
कलकत्ते के फुटपाथों पर जो आँधी पानी सहते हैं।
उनसे पूछो, पन्द्रह अगस्त के बारे में क्या कहते हैं।।
हिन्दी के नाते उनका दुःख सुनते यदि तुम्हें लाज आती।
तो सीमा के उस पार चलो सभ्यता जहाँ कुचली जाती।।
इन्सान जहाँ बेचा जाता, ईमान खरीदा जाता है।
इस्लाम सिसकियाँ भरता है, डालर मन में मुस्काता है।।
भूखों को गोली, नंगों को हथियार पिन्हाये जाते हैं।
सूखे कण्ठों से जेहादी नारे लगवाये जाते हैं।।
लाहौर, कराची, ढाका पर मातम की है काली छाया।
पख्तूनों पर, गिलगित पर है गमगीन गुलामी का साया।।
बस इसीलिए तो कहता हूँ आजादी अभी अधूरी है।
कैसे उल्लास मनाऊँ मैं ? थोड़े दिन की मजबूरी है।।
दिन दूर नहीं खण्डित भारत को पुनः अखण्ड बनायेंगे।
गिलगित से गारो पर्वत तक आजादी पर्व मनायेंगे।।
उस स्वर्ण-दिवस के लिए आज से कमर कसें बलिदान करें।
जो पाया उसमें खो न जायँ, जो खोया उसका ध्यान करें।।

अटल जी जैसा जननायक आज तक दूसरा कोई नहीं हुआ

- राम नाईक

-अटल जी की वाणी सुनने को आज भी तरसता है दिल।

- राष्ट्रधर्म के 'हम सब के अटल जी' विशेषाङ्क का राज्यपाल ने किया विमोचन।

गत १२ अप्रैल मंगलवार को उप्र हिन्दी संस्थान के प्रेक्षागृह में 'राष्ट्रधर्म' (मासिक पत्रिका) के 'हम सब के अटल जी' विशेषाङ्क का लोकार्पण उत्तर प्रदेश के राज्यपाल माननीय श्री राम नाईक ने किया। राज्यपाल ने इस अवसर पर अटल जी से अपने पाँच दशक पुराने सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए कहा कि अटल जी जैसा जननायक आज तक दूसरा कोई नहीं हुआ। वे दृढ़ विश्वास और कोमल हृदय का समन्वय रखनेवाले अकेले जननायक हैं। अटल जी का व्यक्तित्व चुम्बकीय है, जिससे उनके विरोधी भी प्रभावित होते रहे हैं। उन्होंने कहा कि आज भी उनकी वाणी सुनने को दिल तरसता है। बस, कभी-कभी चैनलों में उनकी रिकार्डेड आवाज ही सुनने को मिलती है। वे पूरे देश के लोकप्रिय नेता हैं और उन्होंने स्वयं को हर क्षेत्र में प्रमाणित किया। वे संसदीय परम्परा का पूरा ध्यान रखते रहे और नये सांसदों को आगे आने का अवसर प्रदान करते थे। राज्यपाल ने कहा कि राजनीति में हार को भी स्वीकार करने का उनका अपना अलग ढंग था। बताया कि १९८० में मुम्बई में भाजपा के महाधिवेशन में अटल जी ने अपने भाषण में कहा था कि "अँधेरा छँटेगा, सूरज निकलेगा, कमल खिलेगा,'। इसके बाद वर्ष १९८४ में दो सांसद देने वाली भाजपा की मुम्बई की फिर एक जनसभा में अटल जी को सुनने के लिए भारी भीड़ आयी। जनसभा में अटल जी आये, तो सिर्फ इतना ही कहा, 'आप लोग हारे हुए अटल को देखने आये हैं'। इतना कहते ही भीड़ ठहाका लगाकर हँस पड़ी। राज्यपाल ने कहा कि अटलजी ने अपनी कुशलता से सफलतापूर्वक गठबन्धन की सरकार चलायी। भारत सरकार ने उन्हें 'भारत रत्न' से अलंकृत करके उनके प्रशंसकों को प्रसन्न करने का काम किया है।

लोकार्पण करते मञ्चस्थ अतिथिगण

बायें से - आनन्द मिश्र 'अभय', लालजी टण्डन, रामलाल जी, माननीय राज्यपाल राम नाईक जी, डॉ. सजीश चन्द्र राय, आनन्द मोहन चौधरी

कार्यक्रम का सञ्चालन करते पवनपुत्र बादल

कार्यक्रम में सम्बोधित क

श्री. रामलाल जी

श्री लालजी टण्डन

राज्यपाल श्री राम नाईक ने कहा कि उन्हें अटल जी के साथ पाँच दशक से अधिक कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अटल जी में बहुआयामी व्यक्तित्व, उत्कृष्ट वक्ता, कोमल हृदय कवि जैसे गुणों के अतिरिक्त सबको साथ लेकर चलने की अद्भुत क्षमता थी। बताया कि १९९३ में जब मैं कैंसर रोग से पीड़ित हुआ तो लोक लेखा समिति के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देने के लिए अटल जी के पास गया, तो उन्होंने बड़ी भावुकता से मेरा उत्साहवर्द्धन किया। पोखरण परमाणु परीक्षण की सफलता के बाद अमेरिका ने आर्थिक प्रतिबन्ध लगाया, तो देशवासियों का उनको पूरा समर्थन मिला। कारगिल के युद्ध के दौरान उन्होंने शहीदों के पार्थिव शरीर को उनके परिजनों तक भेजने का निर्णय लिया। पेट्रोलियम मन्त्री रहते हुए मेरा सुझाव कि शहीदों के आश्रितों को पेट्रोल पम्प व गैस ऐजेन्सी दिये जाने,को अटल जी ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की। उन्होंने कहा कि अटल जी सहयोगियों के सुझाव पर तुरन्त निर्णय लेते थे। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय महामन्त्री संगठन श्री रामलाल जी ने कहा कि अटल जी में दूसरों को अपना बना लेने की विशेषता थी। घटक दलों के साथ उन्होंने सफलता से सरकार चलायी। वे अतिसंवेदनशील व्यक्ति थे जिन्हें दूसरों को जोड़ने का संस्कार मिला था। अटल जी का बहुआयामी व्यक्तित्व चर्चा

समारोह में उपस्थित गण्यमान्य

...ते माननीय राज्यपाल जी

विशेषाङ्क पर चर्चा

आनन्द मिश्र 'अभय'

श्री आनन्द मोहन चौधरी

से परे है। लखनऊ के पूर्व महापौर व अटल जी के करीबी पद्मश्री डा. सतीश चन्द्र राय ने कहा कि 'राष्ट्रधर्म', अटल जी और लखनऊ के बीच एक अटूट सम्बन्ध था। लखनऊ से वे सांसद रहे और यहीं से प्रधानमन्त्री बने। लखनऊ में उनके द्वारा अनेक बड़ी योजनाओं का शुभारम्भ किया गया। अपने ओजस्वी वक्तव्य के कारण वे एक वक्ता के रूप में जनता को

...नागरिक, साहित्यकार, समाजसेवी

प्रिय थे। उन्होंने कहा कि अटल जी का हिन्दी के प्रति विशेष प्रेम रहा है। भाजपा के वरिष्ठ नेता पूर्व सांसद श्री लालजी टण्डन ने अटल जी के साथ अपनी पुरानी यादों को साझा करते हुए कहा कि अटल जी अपनी पीड़ा को कविताओं के माध्यम से व्यक्त करते थे। उन्हें कभी किसी से कोई शिकायत नहीं रही। वे सदैव आम आदमी के बीच में रहे। पत्रिका के संपादक श्री आनन्द मिश्र 'अभय' ने इस अवसर पर विशेषाङ्क 'हम सब के अटल जी' का परिचय दिया तथा कार्यक्रम का सञ्चालन प्रबन्धक श्री पवनपुत्र बादल ने किया। समारोह में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के क्षेत्र प्रचारक श्री शिवनारायण जी, प्रान्त प्रचारक श्री संजय जी, सह प्रान्त प्रचारक श्री रमेश जी, श्री रामचन्द्र जी, श्री रामकुमार जी, श्री वीरेन्द्र जायसवाल, श्री अशोक उपाध्याय, प्रशान्त भाटिया, वरिष्ठ पत्रकार सर्वेश सिंह, दिलीप अग्निहोत्री, धीरज त्रिपाठी सहित कई गणमान्य लोग उपस्थित थे।
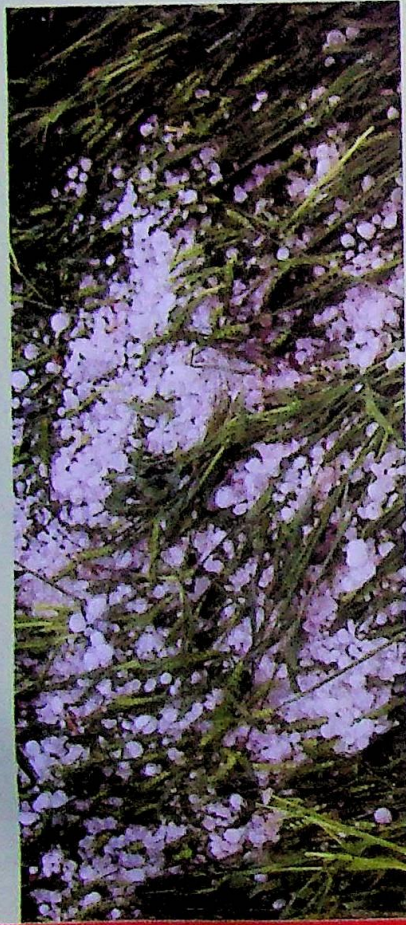
संकट की घड़ी में सरकार किसानों के साथ

ओला वृष्टि से प्रभावित
हर किसान का खेतवार सर्वे होगा।

नुकसान का आकलन राजस्व, कृषि और
पंचायत विभाग का संयुक्त अमला करेगा।

आकलन के आधार पर, प्रभावित कृषकों
को राहत राशि बांटी जायेगी।

शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

किसानों के साथ मध्यप्रदेश सरकार

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

– अटल बिहारी वाजपेयी

मुस्लिम मानसिकता- एक दृष्टिकोण

'राष्ट्रधर्म' के गतांक (रजत जयन्ती विशेषांक, अक्टूबर, १९६०) में प्रकाशित 'भारत और मुस्लिम मनोवृत्ति' शीर्षक सम्पादकीय लेख में मुस्लिम समाज की मनोभूमिका को स्पष्ट कर यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि उसे ठीक–ठाक न समझने के कारण ही हमारे देश का गत अर्द्धशताब्दी का इतिहास मुस्लिम साम्प्रदायिकता की विजय और राष्ट्रीयता के पराजय का इतिहास बन गया। देश का विभाजन, गान्धी जी की हृदय परिवर्त्तन की शक्ति और उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों की पराजय ही नहीं, कांग्रेस की मुस्लिम–तुष्टीकरण की नीति की विफलता ही नहीं, देश की राष्ट्रीयता की सबसे बड़ी हार भी थी। जिस राष्ट्रीयता की प्रबल शक्ति ने अंग्रेजों को धीरे–धीरे अपने अधिकार छोड़ने के लिए विवश किया, वह अंग्रेजों की आखिरी चाल को असफल करने में असमर्थ रही और जाते–जाते भी वे हमें गहरी मात दे गये, जैसी हमने अपने राष्ट्रीय जीवन में कभी नहीं खायी थी।

दोषी मात्र अंग्रेज ही नहीं

किन्तु विभाजन के लिए केवल अंग्रेज ही उत्तरदायी नहीं थे। वे हिन्दू और मुसलमानों को आपस में लड़ाते रहे, यह ठीक है; किन्तु यदि दोनों जातियाँ आपस में लड़ने से इनकार कर देतीं और तीसरी शक्ति के सम्मुख एकरूप और एकरस होकर एक राष्ट्र के नाते खड़ी रहतीं, तो क्या अंग्रेजी–राज का फूट का खेल समाप्त न हो जाता ? साम्राज्यवाद अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए सदैव और सर्वत्र 'फूट डालो और राज करो' की नीति का अवलम्बन करता है। साम, दाम और दण्ड के साथ भेद–नीति का प्रयोग बड़ा पुराना है और अंग्रेजों ने इसका उपयोग कर अपनी राजनीति–कुशलता का परिचय दिया; किन्तु उन्होंने जो कुछ किया, वह उनके लिए स्वाभाविक था; पर क्या यह सम्भव नहीं था कि हम उनके जाल में फँसने से इनकार कर देते और राजनीतिक शतरञ्ज के निर्जीव मोहरे न बनकर सम्पूर्ण शक्ति, बुद्धि एवं युक्ति से एक ऐसी चाल चलते कि सारी बाजी ही पलट जाती ? यह सम्भव था; किन्तु भारत के मुसलमानों ने इसे असम्भव कर दिया। प्रत्येक कीमत पर भी हिन्दू–मुस्लिम एकता का कांग्रेस का प्रयत्न सफल न हुआ और गान्धी जी की प्रेम–साधना पर पानी फिर गया। क्या यह केवल इसलिए हुआ, जैसा कि कांग्रेसी–क्षेत्रों में कहा जाता है कि अंग्रेज दोनों की एकता नहीं होने देते थे और एकता न हो सकी। यदि ऐसा होता, तो आज अंग्रेजों के चले जाने के बाद भारत और पाकिस्तान में हिन्दू और मुसलमानों में संघर्ष का कोई कारण नहीं रहता; किन्तु संघर्ष आज भी है और घटने के बजाय बढ़ता ही जा रहा है। हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य के लिए अंग्रेजों के आने से पूर्व ही मुसलमान इस देश में उखड़े हुए मुस्लिम–राज्य की जड़ें जमाने में संलग्न थे, यह इतिहास से स्पष्ट है। अंग्रेजों की जीत के बाद भी उनके इरादे नहीं बदले। सन् १८५७ में वे देश की स्वतन्त्रता के लिए नहीं, दिल्ली के तख्त पर अपना कब्जा करने के लिए लड़े। वस्तुतः उन्होंने देश को अपना समझा ही नहीं। हिन्दुओं से हारकर भी वे मुगल सल्तनत के सपने देखते रहे। अंग्रेजों की जीत उन्हें हिन्दुओं के पास नहीं लायी। वे अपने मन से शासक होने का भाव नहीं निकाल सके। भारत उनके लिए भोग–भूमि ही बनी रही। वे देश की मिट्टी के रंग में नहीं मिले। उन्हें अरब और फारस की याद सताती रही। वे मक्का और मदीने के गीत गाते रहे। मजहब में ही नहीं, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे अरब और फारस की छाप लगाने लगे। इस्लाम उनके लिए निजी विश्वास की चीज नहीं था। वे उसे राजनीतिक शक्ति का रूप दे रहे थे। उनके सामने बुद्ध के सांस्कृतिक साम्राज्य का चित्र नहीं, तलवार के जोर पर कायम किये गये राज्यों का इतिहास था। भारत में इस्लाम यदि मजहब बनकर आया होता, तो हिन्दू धर्म के विशाल मन्दिर में 'मोहम्मदी पन्थ' की स्थापना भी हो जाती; किन्तु वह राजनीतिक शक्ति बनकर आया। कुरान के साथ तलवार आयी ! पैगम्बर के अनुयायियों ने मूर्त्तिपूजकों के विश्वासों को ही नहीं ललकारा, उनके पौरुष को भी चुनौती दी ! वे मजहब के प्रचारक बनकर नहीं, साम्राज्य के संस्थापक बनकर आये ! मजहब तो उनके घृणित इरादों को छिपाने के लिए पर्दा भर था। संघर्ष अनिवार्य था। वह हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष नहीं, स्वतन्त्रता की लड़ाई थी, राष्ट्रीयता का संग्राम था। अपना साम्राज्य कायम करके जहाँ मुसलमानों ने राजनीतिक विजय प्राप्त की, वहाँ हिन्दुओं में से ही करोड़ों लोगों को उनके दिव्य एवं उदात्त धर्म से च्युत करके हमें सामाजिक पराजय भी दी; किन्तु जय–पराजय की ये छोटी–छोटी लड़ाइयाँ उस बड़े और अखण्ड संग्राम का ही अंग हैं, जिसका परिणाम दिल्ली के मुगल तख्त को टुकड़े–टुकड़े करके अटक से कटक तक स्वराज्य की सीमा का विस्तार करने में हुआ था; किन्तु वह विजय क्षणिक रही।

को दोष देनेवाले आज भारत और पाकिस्तान के संघर्ष के लिए अंग्रेज–अमरीकी गुट को दोषी ठहरा रहे हैं; किन्तु दूसरे के मत्थे दोष मढ़ देने मात्र से अपने दायित्व से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। यदि कल हिन्दू और मुसलमान चाहते, तो अंग्रेज उन्हें एक होने से नहीं रोक सकते थे, और आज भी यदि भारत–पाकिस्तान शान्ति और स्नेह से रहने का निर्णय कर लें, तो अंग्रेज–अमरीकी गुट लाख कोशिश के बाद भी उन्हें लड़ाने में सफल नहीं हो सकते; किन्तु कल जो हम एक न हो सके और आज भी झगड़े हो रहे हैं, उसका कारण बाह्य दबाव नहीं, आन्तरिक मतभेद हैं।

हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष केवल फूट डालने की नीति का परिणाम नहीं, उसके कुछ मौलिक कारण भी हैं। ये कारण सात समुद्र पार की राजनीति से उत्पन्न नहीं, अरब के मरुस्थल और गंगा के हरित–भरित प्रदेश में ही पैदा हुए हैं।

हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष साम्प्रदायिक ही नहीं, राजनीतिक समस्या भी

हिन्दू–मुस्लिम समस्या कोरी साम्प्रदायिक समस्या नहीं है। उसके अन्य पहलू भी हैं। उसमें अर्थ भी है, राजनीति भी है, मजहब भी है, संस्कृति भी है। अंग्रेजी राज में इसका राजनीतिक पहलू उभरा। धीरे–धीरे हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष हमारे राष्ट्रीय संघर्ष का अंग बन गया है। जैसे–जैसे मुसलमान देश की स्वतन्त्रता के विरोधी होते गये, स्वतन्त्रता–प्रिय जनता उनसे दूर होती गयी। ज्यों–ज्यों वे अंग्रेजों के हामी और भारत की अखण्डता के शत्रु होते गये, हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष बढ़ता गया। कुछ अपवादों को छोड़कर जब भारत के मुसलमानों ने एक स्वर में लीग की बँटवारे की माँग का समर्थन किया, तब यह स्पष्ट हो गया कि देश की अखण्डता और स्वतन्त्रता के लिए जनता को दोहरा संघर्ष करना पड़ेगा, उसे विदेशी सत्ता से लोहा लेना पड़ेगा और साथ ही उस सत्ता को देश में बनाये रखने में जो सहायक तत्त्व हैं, उनके विरुद्ध भी लड़ाई छेड़नी होगी; किन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन की दुर्बलता के कारण यह दोहरी लड़ाई न छेड़ी जा सकी। अंग्रेजों को हटाने के लिए आवश्यक शक्ति न होने के कारण कांग्रेस के नेता मुसलमानों के सहयोग के लिए लालायित रहे। शक्ति–सञ्चय के एवं पुनर्जागरण के कार्य को छोड़कर मुस्लिम नेताओं को सन्तुष्ट करने का ही प्रयत्न चलता रहा। परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय आन्दोलन दुर्बल रहा और हम स्वतन्त्रता तथा अखण्डता की दोनों लड़ाइयाँ साथ–साथ नहीं जीत सके।

मुसलमानों ने पृथक् राज्य स्थापित करने के स्वप्न को पूरा करने के लिए देश में दंगे कराये। कलकत्ते का हत्याकाण्ड हिन्दुओं को डराने के लिए ही था। उसका यह उद्देश्य पूरा हुआ। कांग्रेसी नेता भयभीत हो गये। भय और आतंक द्वारा एक के बाद दूसरी माँग मनवाने में सफल होकर मुस्लिम राजनीति ने उसे अपना अभिन्न अंग बना लिया और पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए उसने इसी हथियार से काम लिया। यदि उस समय जनता में पूर्ण चेतना होती, कांग्रेस का नेतृत्व राष्ट्र की आधारभूत शक्ति पर से विश्वास न खोता और राजनीतिक स्वार्थ–साधन के लिए देश की अखण्डता का मोल–तोल करने की प्रवृत्ति न होती, तो इतिहास कुछ दूसरा ही होता; किन्तु ऐसा नहीं हुआ। अपनी न्यूनगण्डता के कारण, शक्ति के ज्ञान के अभाव के कारण और गलती को ठीक न करके उसी पर डटे रहने की हठधर्मी के कारण देश का नेतृत्व सदैव की भाँति साम्प्रदायिक नेताओं की धमकी में आ गया। मध्यवर्ती सरकार में लीगी मन्त्रियों ने कांग्रेसी मन्त्रियों का मनोबल तोड़ दिया। उन्हें सब कुछ डूबता हुआ दिखायी दिया। बुद्धि–भ्रम से वे इस परिणाम पर पहुँचे कि अंग्रेजों को हटाये विना हिन्दू–मुस्लिम एकता असम्भव है; और उन्हें हटाने के लिए हिन्दू–मुस्लिम एकता की जड़ पर सदा–सर्वदा के लिए कुठाराघात कर देनेवाला पाकिस्तान मान लिया गया। यह इसलिए हुआ कि हम हिन्दू–मुस्लिम समस्या को उसके ठीक रूप में समझने में असमर्थ रहे, जबकि वह वस्तुतः राजनीतिक समस्या थी। आज भी भारत–पाकिस्तान के संघर्ष से उत्पन्न समस्या को साम्प्रदायिक कहकर हम उसी भूल की पुनरावृत्ति कर रहे हैं। यह संघर्ष राजनीतिक है और उसका सामना पूर्ण राजनीतिकता के साथ ही होना चाहिए।

सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पहलू

अंग्रेजों के आने से पूर्व ही मुसलमान इस देश में उखड़े हुए मुस्लिम–राज्य की जड़ें जमाने में संलग्न थे, यह इतिहास से स्पष्ट है। अंग्रेजों की जीत के बाद भी उनके इरादे नहीं बदले। सन् १८५७ में वे देश की स्वतन्त्रता के लिए नहीं, दिल्ली के तख्त पर अपना कब्जा करने के लिए लड़े। वस्तुतः उन्होंने देश को अपना समझा ही नहीं। हिन्दुओं से हारकर भी वे मुगल सल्तनत के सपने देखते रहे। अंग्रेजों की जीत उन्हें हिन्दुओं के पास नहीं लायी। वे अपने मन से शासक होने का भाव नहीं निकाल सके। भारत उनके लिए भोग–भूमि ही बनी रही। वे देश की मिट्टी के रंग में नहीं मिले। उन्हें अरब और फारस की याद सताती रही। वे मक्का और मदीने के गीत गाते रहे। मजहब में ही नहीं, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे अरब और फारस की छाप

लगाने लगे। इस्लाम उनके लिए निजी विश्वास की चीज नहीं था। वे उसे राजनीतिक शक्ति का रूप दे रहे थे। उनके सामने बुद्ध के सांस्कृतिक साम्राज्य का चित्र नहीं, तलवार के जोर पर कायम किये गये राज्यों का इतिहास था। भारत में इस्लाम यदि मजहब बनकर आया होता, तो हिन्दू धर्म के विशाल मन्दिर में 'मोहम्मदी पन्थ' की स्थापना भी हो जाती; किन्तु वह राजनीतिक शक्ति बनकर आया। कुरान के साथ तलवार आयी ! पैगम्बर के अनुयायियों ने मूर्तिपूजकों के विश्वासों को ही नहीं ललकारा, उनके पौरुष को भी चुनौती दी ! वे मजहब के प्रचारक बनकर नहीं, साम्राज्य के संस्थापक बनकर आये ! मजहब तो उनके घृणित इरादों को छिपाने के लिए पर्दा भर था। संघर्ष अनिवार्य था। वह हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष नहीं, स्वतन्त्रता की लड़ाई थी, राष्ट्रीयता का संग्राम था। अपना साम्राज्य कायम करके जहाँ मुसलमानों ने राजनीतिक विजय प्राप्त की, वहाँ हिन्दुओं में से ही करोड़ों लोगों को उनके दिव्य एवं उदात्त धर्म से च्युत करके हमें सामाजिक पराजय भी दी; किन्तु जय–पराजय की ये छोटी–छोटी लड़ाइयाँ उस बड़े और अखण्ड संग्राम का ही अंग हैं, जिसका परिणाम दिल्ली के मुगल तख्त को टुकड़े–टुकड़े करके अटक से कटक तक स्वराज्य की सीमा का विस्तार करने में हुआ था; किन्तु वह विजय क्षणिक रही। समुद्र की तरंगों से पराधीनता का नाद उठा और घर की फूट ने व्यापारी के हाथों में राजदण्ड सौंप दिया। एक दृष्टि से उस समय हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष समाप्त होने का काल आ गया था और आवश्यकता यही थी कि दोनों मिलकर अपनी स्वतन्त्रता के लिए लड़ते; किन्तु यह न हुआ। मुसलमानों के नेताओं ने, जो मजहबी कठमुल्ले थे, उन्हें हिन्दुओं के निकट न आने दिया। हिन्दुओं के छुआछूत और जात–पाँत ने उन्हें मुसलमानों के निकट न जाने दिया।

इस प्रकार समस्या का सामाजिक पहलू उभरा। नौकरियों के झगड़े ने संघर्ष को आर्थिक रूप दिया और इन सबसे पुष्ट होकर प्रथम मुस्लिम आक्रमण से प्रारम्भ होने वाला सांस्कृतिक संघर्ष अधिक बढ़ता गया। अंग्रेजों ने इस फूट की अग्नि में घी का काम किया और फिर जो कुछ हुआ, वह हमारे सामने है।

असफल क्यों हुआ एकता का प्रयत्न ?

हिन्दू–मुस्लिम एकता की असफलता और पाकिस्तान की स्थापना दोनों अन्योन्याश्रित हैं और उन्हें एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। पाकिस्तान मानकर कांग्रेस के नेताओं ने अपने प्रयत्नों की पराजय स्वीकार कर ली। अपना मुँह छिपाने के लिए वे आज कुछ भी कहें, सच्चाई यही है। हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रयत्न क्यों असफल हुआ ? क्या कारण है कि एकता के प्रयत्न से ही संघर्ष बढ़ा ?

भिन्न–भिन्न व्यक्ति इन प्रश्नों के भिन्न उत्तर देते हैं। कांग्रेसी इसके लिए अंग्रेजों को दोषी ठहराते हैं और कहते हैं कि यदि अंग्रेज न होते, तो संघर्ष न होता; किन्तु यह बात ठीक नहीं है। अंग्रेजों के आने से पहले भी हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष था और आज अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी संघर्ष है। अंग्रेज जो इस संघर्ष को बढ़ा सके, उसका कारण यही कि संघर्ष के बीज पहले से मौजूद थे और उन्होंने उसमें पानी देकर काँटों का पेड़ खड़ा कर दिया। गान्धी जी ने इस संघर्ष की मौलिकता को समझा और इसलिए उन्होंने राजनीतिक

यदि हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष वस्तुतः आर्थिक संघर्ष है, तो क्या कारण है कि इसमें बलात् धर्म–परिवर्तन किया जाता है, महिलाएँ अपहृत होती हैं और उनके सम्मान पर डाके डाले जाते हैं ? क्या यह सब आर्थिक कारणों से होता है ? कहा जाता है कि पूर्वी बंगाल का हाल का नरमेध भी आर्थिक कारणों से हुआ है। क्या यह सत्य है ? हिन्दुओं को नौकरी, व्यापार तथा उद्योग धन्धों से वञ्चित करने के बाद भी क्या मुसलमान सन्तुष्ट हुए ? क्या शासक बनकर भी वे शोषित ही रहे ? यदि उन्हें सम्पत्ति का ही लोभ था, तो क्या किसी धनवान् मुसलमान का घर भी लूटा गया ? यदि वे हिन्दू जमींदारों के ही विरोधी थे, तो जमींदारी उन्मूलन कर उनकी जमीन हड़प सकते थे; किन्तु उन्होंने उन्हें मौत के घाट क्यों उतारा ? सम्पत्ति लेनी थी, तो उनके घर में आग क्यों लगायी ? उनकी कन्याओं का अपहरण क्यों किया ? भारत द्वारा जूट न खरीदने से यदि उनके घरों की गरीबी बढ़ गयी थी, तो सरकार पर दबाव डालकर उन्होंने उसे भारत के साथ समझौता करने के लिए विवश क्यों नहीं किया ? पाकिस्तान के पूँजीवादी नेता साम्प्रदायिकता को भड़काना चाहते हैं; किन्तु वे अपने इरादों में सफल कैसे हो पाते हैं ? यदि मुसलमानों में गरीबी ज्यादा है, तो उसके खिलाफ लड़ते क्यों नहीं ? यदि इस्लाम में समानता का सिद्धान्त है, तो वे आर्थिक समानता का संघर्ष क्यों नहीं छेड़ते ? क्या कारण है कि हिन्दुस्तानी कम्युनिस्ट पार्टी में जबकि मुसलमानों की संख्या बढ़ रही है, पाकिस्तान में उसकी शक्ति घट रही है ? क्या इसका कारण यह है कि मुस्लिम संस्कार ही ऐसे हैं, जिनके कारण प्रत्येक मुसलमान पहले मुसलमान है, बाद में समाजवादी, साम्यवादी या कांग्रेसी ?

इस्लाम का सारा इतिहास घृणा, हिंसा और विनाश से भरा है और जहाँ-जहाँ वह गया, वहाँ इसने अपनी बर्बरता का परिचय दिया। अपहरण और बलात्कार इस्लाम के लिए नये शब्द नहीं हैं। तेरह सौ वर्ष पूर्व प्रचलित यह मजहब 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उच्च तथा उदात्त सिद्धान्तों पर स्थापित नहीं है। हृदय की इतनी विशालता इस्लाम में कहाँ ? वहाँ तो दम घोंट देनेवाली संकुचितता है। कुरान के उद्धरण देकर गान्धी जी प्रेम और सेवा का उपदेश दिया करते थे; किन्तु कुरान में कुछ ऐसी आयतें हैं, जिनमें काफिरों को मारने की बात कही गयी है।

लायन्ती खजिल मोमिनूनल काफिरीन औलिया अमिन्दनिल मोमिनीन। व मंयफ्पु अल जालिक फलैसमिनललाहि फी शैतून हल्ला अन्त तक मिन हुम तुका।

अर्थात् मुसलमानों को उचित है कि वह मुसलमानों के अतिरिक्त काफिर से कभी मित्रता न करें, जो ऐसा करेंगे अल्लाह से उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं रहेगा। किसी भी प्रकार काफिर से बचते रहो। इतना ही नहीं, एक स्थान पर तो यह भी कहा गया है-

बतान फी दीने कुम फकातिल अहम्मतल कुफ्रे। इन्तहम लआ ऐमान लहुम लअल्लहम पन्तहूम।

अर्थात् जो तुम्हारे मजहब में हस्तक्षेप करते हैं, उनका कत्ल कर दो। ऐसों की बात विश्वास के योग्य नहीं। ऐसी और भी कई आयतें हैं, जिनमें प्रेम का नहीं, घृणा का प्रतिपादन किया गया है। मुस्लिम जनता में हिन्दुओं के प्रति घृणा पैदा करने में जो लीगी नेता इतनी जल्दी सफल हो सके, उसका कारण यही था कि प्रत्येक मुसलमान के मन में वह घृणा बीज रूप में मौजूद है और उसे पानी देने भर की देर है। कांग्रेस के नेताओं ने कुरान की आयतें पढ़-पढ़ कर एकता करनी चाही। उनका प्रयत्न नशा उतारने के लिए शराब देने जैसा रहा। राष्ट्रीय मुसलमान और जमैयत के नेताओं के प्रयत्नों से मुसलमानों की साम्प्रदायिकता बढ़ने का कारण भी यही है। किसी भी मुस्लिम नेता ने कमाल अतातुर्क की तरह से मुसलमानों के दिल और दिमाग में, उनके विचारों में क्रान्ति करने की चेष्टा नहीं की। किसी ने उन्हें अन्धविश्वास के गर्त में से निकाल कर बुद्धि और तर्क के प्रकाश में राह ढूँढ़ने की प्रेरणा नहीं दी। किसी ने उनसे यह नहीं कहा कि १३०० वर्ष पूर्व लिखी गयी यह पुस्तक आज काम नहीं दे सकती, इसमें वर्तमान समय के अनुरूप जो कुछ है, उसे लेकर शेष को छोड़ दो। इसके विपरीत सबने कुरान की ही दुहाई दी। हिन्दुओं के साथ प्रेम से रहना चाहिए, इसके लिए भी कुरान का ही उद्धरण दिया गया। जिस खलीफा को तुर्की के पढ़े-लिखे समझदार मुसलमानों ने निकाल बाहर किया, उसे बनाये रखने के लिए भारत के मुसलमान लड़े और कांग्रेस ने उनका साथ दिया। यह हमारे राष्ट्र-जीवन की भयंकरतम भूल थी।

मोलतोल के साथ हिन्दू धर्म और इस्लाम को पास-पास लाने का प्रयत्न किया। "ईश्वर अल्ला तेरो नाम" इसी प्रयत्न का परिणाम था। गोवध की छूट देकर कुरान की आयतों का पाठ, अरबी-फारसी तथा उर्दू सीखने पर जोर देकर, 'खिलाफत' को राष्ट्रीय आन्दोलन बनाकर, गान्धी जी ने सांस्कृतिक खाई को भरने का प्रयास किया, किन्तु वे सफल न हुए। अकबर के "दीन इलाही" की तर्ज से 'ईश्वर अल्ला तेरो नाम' हिन्दू और मुसलमान दोनों की ओर से पुरस्कृत न हुआ। हिन्दुओं ने तो उसे गाया भी, किन्तु जिन मुसलमानों के हृदय जीतने के लिए उसे गाया, वे उससे और भी दूर भागे। राजनीतिक क्षेत्र की भाँति कांग्रेस के नेताओं ने धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में भी मुसलमानों को सुविधाएँ (Concession) दीं; किन्तु वे नहीं माने। कारण यह कि उन्हें मनाने का यह ढंग ही गलत था। यदि एकता करनी थी, तो एकरूप होना था। प्रेम के मार्ग में दो नहीं चल सकते और हमने दो भाषाएँ, दो लिपियाँ, दो संस्कृतियाँ मानकर प्रेम का पथ ही काट दिया। कांग्रेस एक राष्ट्रीयता का नारा लगाती रही; किन्तु व्यवहार में मुसलमानों का पृथक् अस्तित्व मानती रही। उसने मुसलमानों से एक जाति के रूप में समझौता करने के प्रयत्न किये, परिणाम यह हुआ कि उनकी जातीयता बढ़ती गयी। वे अपना महत्त्व अधिक समझने लगे और उन्होंने देशप्रेम को व्यापार की वस्तु बना लिया। कांग्रेस भी उनसे देश-भक्ति का सौदा करने लगी और यह नहीं समझी कि स्वतन्त्रता, प्रेम और राष्ट्र की भक्ति क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति का नाम नहीं है।

कांग्रेस ने एक गलती और भी की। उसने कभी मुस्लिम जनता में सीधे सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया। वह मुस्लिम नेताओं से ही मोल-तोल करती रही और उसने उनकी स्वार्थांधता को नहीं देखा। उसने यह नहीं पहचाना कि ये मुस्लिम नेता नेतृत्व के भूखे हैं और उनकी भूख को कभी शान्त नहीं किया जा सकता। मुस्लिम मनोवृत्ति को ठीक-ठीक न समझकर कांग्रेस ने सब ऐसे काम किये, जिनसे मुस्लिम नेताओं में यह भाव पैदा हुआ कि हमारे बिना कुछ नहीं हो सकता। उन्होंने कांग्रेस के सामने एक के बाद दूसरी माँग रखी; किन्तु एक माँग मञ्जूर होने पर अंग्रेजों के पास जाकर उससे अधिक प्राप्त किया। यही चक्र चलता रहा। यदि कांग्रेस के नेता मुस्लिम जनता से सीधा सम्बन्ध स्थापित करते और उन्हें अपनी ओर मिलाने का ही नहीं, अपने साँचे में ढालने का संस्कार डालकर भारतीय बना लेने का प्रयत्न करते, तो शायद इतनी बड़ी असफलता हाथ न लगती। हिन्दू-मुस्लिम
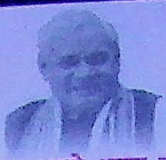
एकता के लिए कांग्रेस ने जो कदम उठाये, उनसे मुसलमानों की पृथक्ता की भावना बल पकड़ती गयी, उनके स्वार्थी, संकुचित और पिछड़े हुए नेताओं के दिमाग आसमान पर चढ़ते गये और हिन्दुओं से अलग रहने में ही उन्हें अपना लाभ दिखायी देने लगा। इस नेतृत्व ने अपना उल्लू सीधा करने के लिए मजहब का सहारा लिया, घृणा को भड़काया, गड़े मुर्दे उखाड़े और कांग्रेसी नेता उनके लिए सामान जुटाते रहे। मत–मतान्तर का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है, यह कहकर भी इस्लाम की राजनीतिक शक्ति को स्वीकार किया गया और रूढ़िवाद की भाँति उसके विषैले स्वरूप का विरोध नहीं किया गया। आज भी कांग्रेस यही भूल कर रही है। मुसलमानों का नेतृत्व लीग के हाथ से निकल कर जमैयत और पाकिस्तानी नेताओं के हाथ में चला गया है और मुसलमान कांग्रेस से आज भी उतने ही दूर हैं। असाम्प्रदायिकता के नारे जो उन्हें लुभाने में सफल नहीं हो पा रहे हैं, उसका कारण यही है कि मुसलमान का दिल और दिमाग नहीं बदला है और न उसे बदलने का प्रयत्न ही हो रहा है। चुनाव के चक्कर में उन्हें खुश करने की नीति को बनाये रखा जा रहा है और समस्या के मूल की उपेक्षा हो रही है।

कुछ लोगों का कहना है कि हिन्दू–मुस्लिम समस्या विशुद्ध आर्थिक है और मुसलमान हिन्दुओं को इसीलिए मारते, लूटते और उनके घरों को आग लगाते हैं कि वे निर्धन हैं और हिन्दू धनवान हैं। इस प्रकार का तर्क कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से पाकिस्तान की माँग के सम्बन्ध में रखा गया था और कहा गया था कि पाकिस्तान मुस्लिम पूँजीपतियों का षड्यन्त्र है; किन्तु कम्युनिस्ट पार्टी इस विश्लेषण पर अधिक दिन तक कायम नहीं रही और उसने आत्मनिर्णय के अधिकार के अनुसार पाकिस्तान का समर्थन प्रारम्भ कर दिया। मार्क्स और लेनिन के सिद्धान्तों में राष्ट्रीयता (Nationalities) की समस्या का हल करने के लिए मजहब के आधार पर एक जाति को अलग राज्य बनाने का अधिकार देने की कहाँ तक पुष्टि की गयी है, यह तो उनका परस्पर विरोधी अर्थ लगानेवाले मार्क्सवादी ही जानें; किन्तु पाकिस्तान की स्थापना के पूर्व और बाद में मुस्लिम सर्वहारा ने जिस प्रकार 'हिन्दू सर्वहारा' के सर्वनाश की योजना कार्यान्वित की, उसे देखकर आर्थिक संघर्ष का सिद्धान्त प्रतिपादित होने के पूर्व ही समाप्त हो गया।

यदि हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष वस्तुतः आर्थिक संघर्ष है, तो क्या कारण है कि इसमें बलात् धर्म–परिवर्तन किया जाता है, महिलाएँ अपहृत होती हैं और उनके सम्मान पर डाके डाले जाते हैं? क्या यह सब आर्थिक कारणों से होता है? कहा जाता है कि पूर्वी बंगाल का हाल का नरमेध भी आर्थिक कारणों से हुआ है। क्या यह सत्य है? हिन्दुओं को नौकरी, व्यापार तथा उद्योग धन्धों से वञ्चित करने के बाद भी क्या मुसलमान सन्तुष्ट हुए? क्या शासक बनकर भी वे शोषित ही रहे? यदि उन्हें सम्पत्ति का ही लोभ था, तो क्या किसी धनवान् मुसलमान का घर भी लूटा गया? यदि वे हिन्दू जमींदारों के ही विरोधी थे, तो जमींदारी उन्मूलन कर उनकी जमीन हड़प सकते थे; किन्तु उन्होंने उन्हें मौत के घाट क्यों उतारा? सम्पत्ति लेनी थी, तो उनके घर में आग क्यों लगायी? उनकी कन्याओं का अपहरण क्यों किया? भारत द्वारा जूट न खरीदने से यदि उनके घरों की गरीबी बढ़ गयी थी, तो सरकार पर दबाव डालकर उन्होंने उसे भारत के साथ समझौता करने के लिए विवश क्यों नहीं किया? पाकिस्तान के पूँजीवादी नेता साम्प्रदायिकता को भड़काना चाहते हैं; किन्तु वे अपने इरादों में सफल कैसे हो पाते हैं? यदि मुसलमानों में गरीबी ज्यादा है, तो उसके खिलाफ लड़ते क्यों नहीं? यदि इस्लाम में समानता का सिद्धान्त है, तो वे आर्थिक समानता का संघर्ष क्यों नहीं छेड़ते? क्या कारण है कि हिन्दुस्तानी कम्युनिस्ट पार्टी में जबकि मुसलमानों की संख्या बढ़ रही है, पाकिस्तान में उसकी शक्ति घट रही है? क्या इसका कारण यह है कि मुस्लिम संस्कार ही ऐसे हैं, जिनके कारण प्रत्येक मुसलमान पहले मुसलमान है, बाद में समाजवादी, साम्यवादी या कांग्रेसी? आर्थिक संघर्ष होते हुए भी जो संस्कार हिन्दू की सम्पत्ति के साथ उसके सम्मान पर भी हाथ डालने की प्रेरणा देते हैं, वे बड़े प्रबल होने चाहिए। वस्तुतः झगड़ा केवल रोटी का नहीं, बुद्धि, हृदय और पेट तीनों का है।

राष्ट्र–जीवन की भयंकरतम भूल

इस्लाम का सारा इतिहास घृणा, हिंसा और विनाश से भरा है और जहाँ–जहाँ वह गया, वहाँ इसने अपनी बर्बरता का परिचय दिया। अपहरण और बलात्कार इस्लाम के लिए नये शब्द नहीं हैं। तेरह सौ वर्ष पूर्व प्रचलित यह मजहब 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उच्च तथा उदात्त सिद्धान्तों पर स्थापित नहीं है। हृदय की इतनी विशालता इस्लाम में कहाँ? वहाँ तो दम घोंट देनेवाली संकुचितता है। कुरान के उद्धरण देकर गान्धी जी प्रेम और सेवा का उपदेश दिया करते थे; किन्तु कुरान में कुछ ऐसी आयतें हैं, जिनमें काफिरों को मारने की बात कही गयी है।

लायन्ती खजिल मोमिनूनल काफिरीन औलिया अमिन्दनिल मोमिनीन। व मंयपु अल जालिक फलैसमिनललाहि फी शैतून हल्ला अन्त

तक मिन हुम तुका।

अर्थात् मुसलमानों को उचित है कि वह मुसलमानों के अतिरिक्त काफिर से कभी मित्रता न करें, जो ऐसा करेंगे अल्लाह से उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं रहेगा। किसी भी प्रकार काफिर से बचते रहो। इतना ही नहीं, एक स्थान पर तो यह भी कहा गया है–

बतान फी दीने कुम फकातिल अहम्मतल कुफ्रे। इन्तहम लआ ऐमान लहुम लअल्लहम पन्तहूम।

अर्थात् जो तुम्हारे मजहब में हस्तक्षेप करते हैं, उनका कत्ल कर दो। ऐसों की बात विश्वास के योग्य नहीं। ऐसी और भी कई आयतें हैं, जिनमें प्रेम का नहीं, घृणा का प्रतिपादन किया गया है। मुस्लिम जनता में हिन्दुओं के प्रति घृणा पैदा करने में जो लीगी नेता इतनी जल्दी सफल हो सके, उसका कारण यही था कि प्रत्येक मुसलमान के मन में वह घृणा बीज रूप में मौजूद है और उसे पानी देने भर की देर है। कांग्रेस के नेताओं ने कुरान की आयतें पढ़–पढ़ कर एकता करनी चाही। उनका प्रयत्न नशा उतारने के लिए शराब देने जैसा रहा। राष्ट्रीय मुसलमान और जमैयत के नेताओं के प्रयत्नों से मुसलमानों की साम्प्रदायिकता बढ़ने का कारण भी यही है। किसी भी मुस्लिम नेता ने कमाल अतातुर्क की तरह से मुसलमानों के दिल और दिमाग में, उनके विचारों में क्रान्ति करने की चेष्टा नहीं की। किसी ने उन्हें अन्धविश्वास के गर्त्त में से निकाल कर बुद्धि और तर्क के प्रकाश में राह ढूँढ़ने की प्रेरणा नहीं दी। किसी ने उनसे यह नहीं कहा कि १३०० वर्ष पूर्व लिखी गयी यह पुस्तक आज काम नहीं दे सकती, इसमें वर्त्तमान समय के अनुरूप जो कुछ है, उसे लेकर शेष को छोड़ दो। इसके विपरीत सबने कुरान की ही दुहाई दी। हिन्दुओं के साथ प्रेम से रहना चाहिए, इसके लिए भी कुरान का ही उद्धरण दिया गया। जिस खलीफा को तुर्की के पढ़े–लिखे समझदार मुसलमानों ने निकाल बाहर किया, उसे बनाये रखने के लिए भारत के मुसलमान लड़े और कांग्रेस ने उनका साथ दिया। यह हमारे राष्ट्र–जीवन की भयंकरतम भूल थी।

मुसलमानों के मजहबी पागलपन की समाप्ति के विना एकता असम्भव

हिन्दू–मुस्लिम एकता के नाम पर सारे देश में 'अल्ला हो अकबर' के नारे लगाये गये और उसमें हिन्दुओं ने योग दिया। इस नारे का परिणाम क्या हुआ, यह मोपला काण्ड से पता चला। यह इसलिए हुआ कि **कांग्रेस के नेता मुस्लिम मनोवृत्ति को, संस्कार डालने की पद्धति को, किसी को आत्मसात् करने की प्रणाली को हृदयंगम करने में असमर्थ रहे। वे यह नहीं समझे कि जिस इस्लाम ने अपने जीवन में बर्बादी का निर्माण किया है, उसका नाम लेकर और दुहाई देकर मुसलमानों में राष्ट्रीयता के भाव कैसे भरे जा सकते हैं? इस्लाम तो राष्ट्रीयता का विरोधी है। वह तो मजहबी बन्धुता का प्रतिपादक है। वह राष्ट्र की सीमाओं को नहीं मानता। उसके पुण्यस्थल देश के बाहर हैं। वह विध्वंसक शक्ति है। उसे मोड़ने की, अपने रंग में ढालने की आवश्यकता थी; किन्तु कांग्रेस के नेता इसे नहीं समझे। खिलाफत आन्दोलन द्वारा उन्होंने मुसलमान की देश–बाह्य निष्ठा को बढ़ावा दिया, अन्धविश्वास को पुष्ट किया और मुसलमान होने के उसके मिथ्याभिमान को आत्मगौरव में बदल दिया।** परिणाम यह हुआ कि एकता होने के बजाय विभेद बढ़ गये।

आज भी कोई राष्ट्रीय मुसलमान ऐसा नहीं है, जो मुसलमानों से यह साफ–साफ कहे कि मजहब निजी विश्वास की वस्तु है, उसे छोड़कर शेष सब बातों में तुम्हें भारतीय होना चाहिए। वेषभूषा, खानपान, नाम–धाम और तिथि–त्योहार में भारत के मुसलमान आखिर भारत की परम्परा को क्यों नहीं अपनाते? चीन में भी तो मुसलमान रहते हैं। रूस में मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या निवास करती है। क्या चीन के मुसलमान की वेषभूषा वहाँ के ईसाई से अलग रहती है? क्या तजाकिस्तान के मुसलमान की संस्कृति वहाँ के अन्य निवासियों से भिन्न है? चीन और रूस के मुसलमान चीनी और रूसी पहले हैं, मुसलमान बाद में; किन्तु भारत के मुसलमानों का हिसाब उलटा है। वे पहले मुसलमान हैं और बाद में भी मुसलमान हैं। उन्हें देश के तीर्थस्थानों के प्रति श्रद्धा होनी तो दूर रही, वे उन्हें भ्रष्ट और भग्न करने के लिए कमर कसे हुए हैं। देश के महापुरुषों को अपना महापुरुष मानना दूर रहा, वे उन्हें अपमानित करने पर तुले हुए हैं। उन्हें हिन्दी और संस्कृत से प्रेम नहीं, अरबी और फारसी से लगाव है। उनके नाम धाम भी अरबी के हैं, उनकी वेषभूषा भी अभारतीय है। यह सब होते हुए क्या यह सम्भव है कि संघर्ष का सांस्कृतिक कारण दूर हो सके? और जब तक सांस्कृतिक एकता नहीं होती, तब तक राजनीतिक और आर्थिक कारणों के निवारण की आशा करना दुराशा मात्र है।

मुस्लिम मनोवृत्ति में आमूल–चूल परिवर्त्तन लाये विना भारत में जनवादी असाम्प्रदायिक राज्य की स्थापना का स्वप्न कभी पूरा नहीं हो सकता। यदि मुसलमानों की पृथक् संस्कृति रहेगी, तो पृथक्ता बढ़ेगी, मतभेद की खाई चौड़ी होगी और आपस में पुनः संघर्ष होंगे। **इस दृष्टि से पाकिस्तान की स्थापना हिन्दू–मुस्लिम एकता के मार्ग**
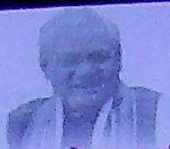
में हिमालय सिद्ध होगी। पाकिस्तान कभी भी यह नहीं चाहेगा कि भारत के मुसलमानों का भारतीयकरण हो जाये, वे सच्चे अर्थों में भारत के सपूत बन जायें और इसके लिए वह समय-समय पर घृणा की विषैली गैस सीमा के पार से इधर फेंकेगा। पूर्वी पाकिस्तान का वर्तमान हत्याकाण्ड ऐसा ही प्रयत्न है। पाकिस्तान के नेता उसी मनोवृत्ति से काम ले रहे हैं, जिसका परिचय लीग के नेताओं ने दिया था। कांग्रेस की नीति उसका सामना करने में असफल रही थी। आज यदि हम फिर उन्हीं पुराने हथियारों से लड़ें और प्रतिपक्षी की मनोभूमिका को न समझें; तो असफलता निश्चित है। भारत-पाकिस्तान समझौते में अल्पसंख्यकों की संस्कृति की रक्षा का वचन देकर हिन्दू-मुस्लिम एकता का मार्ग सदैव के लिए बन्द कर दिया गया है, उस समझौते का नाम लेकर आज मुस्लिम नेता राजर्षि टण्डन की एक संस्कृति की माँग की आलोचना करने लगे हैं, उन पर समझौते के विरुद्ध प्रचार करने का आरोप लगाने लगे हैं। ये लक्षण अच्छे नहीं हैं।

अल्पसंख्यकों की संस्कृति यदि अलग रही और उसे देश की मिट्टी से, संस्कृति से, पृथक् रखने का प्रयास हुआ, तो संघर्ष अनिवार्य है। पं. गोविन्द वल्लभ पन्त ने उर्दू पत्रकार सम्मेलन में बोलते हुए मुसलमानों से होली तथा अन्य त्योहारों में हिस्सा बटाने की अपील की है। क्या यह उनकी संस्कृति के विरुद्ध नहीं है ? क्या यह भारत-पाकिस्तान समझौते के विरुद्ध नहीं है ? **संस्कृति के साथ साहित्य, भाषा, वेष तथा जीवन की सभी बातें संलग्न हैं। कल यदि संस्कृति की रक्षा के नाम पर मुसलमान अरबी-फारसी के विद्यालयों की माँग** करने लगे, जमैयत तथा शिया कान्फ्रेंस के विषैले प्रचार और पाकिस्तान रेडियो के बहकाने में आकर उर्दू के लिए लड़ने लगे, तो क्या होगा ? आज चूड़ीदार पैजामा तथा शेरवानी को राजकीय वेष बनाया गया है, कल यदि धोती कुरते को यह सम्मान देने का निश्चय हुआ, तो क्या मुसलमान पृथक् संस्कृति के नाम पर उसका विरोध नहीं करेंगे ? हिन्दू-मुसलमान एकता के प्रेमियों को इन प्रश्नों पर शान्त चित्त से विचार कर लेना चाहिए। यदि मुसलमानों का मजहबी पागलपन खत्म नहीं होता, तो एकता के सारे प्रयत्न व्यर्थ होंगे, फिर उस उन्माद का लाभ उठाकर कोई भी जिन्ना और लियाकत अली उन्हें राजनीतिक शक्ति बनाने के प्रयत्न में सफलता प्राप्त कर लेगा। क्या यह बड़े आश्चर्य की बात नहीं है कि मुस्लिम लीग के सभी नेता अंग्रेजी पढ़े-लिखे आधुनिक लोग हैं ? यदि शिक्षा का प्रभाव भी मुस्लिम विश्वविद्यालय के तरुण विद्यार्थियों की मतान्धता को नहीं मिटा सका, तो क्या मुस्लिम संस्कृति के पृथक् अस्तित्व को स्वीकार कर हम मिली-जुली राष्ट्रीयता का निर्माण कर सकेंगे ? द्विराष्ट्र सिद्धान्त का विरोध करते हुए भी कांग्रेस ने ही उसे सबसे अधिक बढ़ावा दिया है। **आज भी हिन्दू-मुस्लिम एकता की यथार्थ कल्पना न होने के कारण कांग्रेस के नेता ही उसे असम्भव बनाते जा रहे हैं।** यदि भारत एक राष्ट्र है, तो उसकी संस्कृति भी एक ही रहेगी। अल्पसंख्यकों की पृथक् संस्कृति को स्वीकार करना एक राष्ट्र के सिद्धान्त पर कुठाराघात करना है। इसका परिणाम भयावह होगा।

हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के मूल में सांस्कृतिक संघर्ष ही नहीं है। यदि राष्ट्रीयतावादी सांस्कृतिक संघर्ष में पराजित हो गये, तो अर्थ, राजनीति एवं मजहब के क्षेत्र में भी उनकी पराजय निश्चित है। पूर्वी बंगाल की भाँति भारत के उद्योग-धन्धे भी तो हिन्दुओं के हाथ में हैं। क्या मजहब के नाम पर यहाँ के मुसलमानों को हिन्दुओं के घर लूटने के लिए नहीं भड़काया जा सकेगा ? मुस्लिम मनोवृत्ति का दिग्दर्शन कराने के लिए केवल यह बात ही पर्याप्त है कि मुस्लिम गुण्डों की नजर हिन्दुओं की धन-सम्पत्ति पर इतनी नहीं रहती, जितनी उनकी कन्याओं पर और क्या यह दुर्घटना ही है कि उनके अपराधों की सूची में अपहरण काण्ड ही अधिक रहते हैं। मुसलमान के हरेक कृत्य में इस्लाम की प्रेरणा साफ दिखाई देती है। उच्च शिक्षा का प्रचार भी इस विकृत प्रेरणा के द्वार को बन्द करने में असमर्थ रहा है। उसके लिए तो उनके राष्ट्रीयकरण की तुलना में मुसलमानों के राष्ट्रीयकरण की समस्या अधिक गम्भीर एवं महत्वपूर्ण है।

हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष ने देश की चतुर्मुखी प्रगति को रोक रखा है। उसे हल किये बिना पुनर्निर्माण का कार्य होना कठिन है। मुस्लिम मनोवृत्ति को ठीक-ठीक समझ कर हमें उसके आमूल-चूल परिवर्तन का उद्योग करना है। मुसलमानों का नेतृत्व जमैयत के हाथ से निकलकर पाकिस्तान रेडियो के हाथ पहुँच गया है। उसके आदेश पर उत्तर प्रदेश के हजारों मुसलमान घर-द्वार छोड़कर असाम्प्रदायिक राज्य की खिल्ली उड़ाते हुए पाकिस्तान चले जा रहे हैं। उन्हें रोकने से इनकार करके और रोकने के सरकारी प्रयत्नों का विरोध करके मुस्लिम नेताओं ने अपनी असलियत का परिचय दे दिया है। उनके दिवालिया, प्रतिगामी एवं मजहबी नेतृत्व के भरोसे हिन्दू-मुस्लिम एकता का स्वप्न देखना दिवास्वप्न ही सिद्ध होगा। कल यदि अलीगढ़ के

ताले बनाने वालों तथा फिरोजाबाद के चूड़ी निर्माताओं की तरह शास्त्रीय शिक्षा प्राप्त किये हुए सारे मुसलमान भारत से चले जाना चाहेंगे, तो आज उन्हें जल, थल तथा नभ सेना में शिक्षित करने से ही क्या लाभ ? फिर उन्हें उच्च वैज्ञानिक तथा अन्य राष्ट्रोपयोगी शिक्षा देने का ही क्या फायदा ? फिर उन्हें रेल, तार, डाक तथा अन्य महत्त्वपूर्ण स्थानों से तुरन्त हटा देना चाहिए या यह वचन ले लेना चाहिए कि उन्हें अपनी नौकरी खत्म होने तक भारत से नहीं जाने दिया जायेगा। क्या ऐसा हो सकेगा ? क्या पुराने अनुभवों के मूल में जाकर उसके योग्य निराकरण का उपाय काम में लाया जायेगा ? यह वर्तमान नेतृत्व के हाथ में है कि वह अपनी असफलता को सफलता में बदल देने का आखिरी प्रयत्न करे। नेहरू–लियाकत समझौता इस दृष्टि से रोड़ा ही सिद्ध होगा। पाकिस्तान की भाँति यदि इस बुराई में से भी अच्छाई निकलने की आशा से नेताओं ने मुसलमानों के भारतीयकरण पर जोर नहीं दिया, तो असाम्प्रदायिकता की गहरी पराजय होगी और दो राष्ट्र स्थापित करने का मुस्लिम नेताओं का प्रयत्न सफल हो जायेगा।

□

जम्मू की पुकार

– अटल बिहारी वाजपेयी

अत्याचारी ने आज पुनः ललकारा,
अन्यायी का चलता है दमन–दुधारा।
आँखों के आगे सत्य मिटा जाता है,
भारतमाता का शीश कटा जाता है।
क्या पुनः देश टुकड़ों में बँट जायेगा ?
क्या सबका शोणित पानी बन जायेगा ?
कब तक दानव की माया चलने देंगे,
कब तक भस्मासुर को हम छलने देंगे ?
कब तक जम्मू को यों ही जलने देंगे ?
कब तक जुल्मों की मदिरा ढलने देंगे ?
चुपचाप सहेंगे कब तक लाठी गोली ?
कब तक खेलेंगे दुश्मन खूँ से होली ?
प्रह्लाद परीक्षा की बेला अब आई,
होलिका बनी देखो अब्दुल्लाशाही।
माँ–बहनों का अपमान सहेंगे कब तक ?
भोले पाण्डव चुपचाप रहेंगे कब तक ?
आखिर सहने की भी सीमा होती है,
सागर के उर में भी ज्वाला सोती है।
मलयानिल कभी बवंडर बन ही जाता,
भोले शिव का तीसरा नेत्र खुल जाता।
जिनको जन–धन से मोह, प्राण से ममता,
वे दूर रहें जब 'पाञ्चजन्य' है बजता।
जो विमुख युद्ध से, हठी क्रूर, कादर हैं ?
रणभेरी सुन कम्पित जिन के अन्तर हैं।
वे दूर रहें चूड़ियाँ पहन घर बैठें,
बहनें थूकें, माताएँ कान उमेठें।
जो मानसिंह के वंशज सम्मुख आयें,
फिर एक बार घर में ही आग लगायें।

पर अन्यायी की लंका अब न रहेगी,
आनेवाली सन्तानें यूँ न सहेंगी।
पुत्रों के रहते कटा जननि का माथा,
चुप रहे देखते अन्यायों की गाथा।
अब शोणित से इतिहास नया लिखना है,
बलि–पथ पर निर्भय पाँव आज रखना है।
आओ खण्डित भारत के वासी आओ,
काश्मीर बुलाता, त्याग उदासी आओ।
शंकर का मठ, कल्हण का काव्य जगाता,
जम्मू का कण–कण त्राहि–त्राहि चिल्लाता।
लो सुनो शहीदों की पुकार आती है,
अत्याचारी की सत्ता थर्राती है।
उजड़े सुहाग की लाली तुम्हें बुलाती,
अधजली चिता मतवाली तुम्हें जगाती।
अस्थियाँ शहीदों की देतीं आमन्त्रण,
बलिवेदी पर कर दो सर्वस्व समर्पण।
कारागारों की दीवारों का न्योता,
कैसी दुर्बलता अब कैसा समझौता ?
हाथों में लेकर प्राण चलो मतवालो,
सीने में लेकर आग चलो प्रण वालो।
जो कदम बढ़ा अब पीछे नहीं हटेगा,
बच्चा–बच्चा हँस–हँसकर मरे मिटेगा।
वर्षों के बाद आज बलि का दिन आया,
अन्याय–न्याय का चिर संघर्षण आया।
फिर एक बार भारत की किस्मत जागी,
जनता जागी, अपमानित अस्मत जागी।
देखो स्वदेश की कीर्ति न कम हो जाये,
कण-कण पर फिर बलि की छाया छा जाये।

– जगदीश तोमर
निदेशक, प्रेमचंद सृजन पीठ, उज्जैन

जब अटल जी को देखा, सुना

मैंने १९५३ में अटल जी को महाराजबाड़े के मञ्च पर पहली बार देखा। तब वे जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के निजी सचिव थे और उन्हीं के साथ देश के दौरे पर निकले थे। डॉक्टर मुखर्जी, जम्मू–कश्मीर को भारत से पृथक् कर उसे एक स्वतन्त्र राज्य बनाये जाने के षड्यन्त्र से समूचे देश को सावधान कर रहे थे। डॉ. मुखर्जी एक देश में दो प्रधान, दो विधान और दो निशान के विरुद्ध सत्याग्रह करने श्रीनगर जा रहे थे। उधर जाते हुए वह ग्वालियर आये थे और महाराजबाड़े के मञ्च से उन्होंने नगरवासियों को सम्बोधित किया था। तब, उनसे पूर्व अटल जी बोले थे। उनका भाषण अत्यन्त ओजपूर्ण और प्रभावशाली था। उसे सुनकर महाराजवाड़े पर जमा सहस्त्रों श्रोता मन्त्रमुग्ध हो गये थे। उनका वह भाषण क्या था किसी चन्द बरदाई या भूषण का काव्य पाठ था और वह मुझ जैसे तमाम विद्यार्थियों के दिल–दिमाग पर छा गया था।

१९५७ में वह बलरामपुर उ.प्र. से लोकसभा के लिए पहली बार निर्वाचित हुए थे। उसके तीन–चार माह बाद वह ग्वालियर पधारे। तब हमारे महाविद्यालय के प्राचार्य प्रो. शंकर केशव अभ्यंकर थे और छात्रसंघ के परामर्शदाता थे प्रो. ना. वा. गोडबोले। मैं संयोग से छात्रसंघ का पदाधिकारी था इसलिए प्राचार्य महोदय एवं परामर्शदाता सर ने मुझे बुलाया और बताया कि श्री अटल बिहारी वाजपेयी नगर में हैं, सांसद निर्वाचित हुए हैं, अपने महाविद्यालय के पूर्वछात्र हैं, इसलिए हमें उन्हें यहाँ बुलाकर उनका सम्मान करना चाहिए। मुझे उनका प्रस्ताव एवं परामर्श बहुत प्रिय लगा। अटल जी विपक्ष के सांसद थे तथा देश एवं प्रदेश में कांग्रेस सत्तारूढ़ थी; किन्तु हमारे आचार्यगण अटल जी को कालेज में आमन्त्रित कर उन्हें शाल, श्रीफल आदि भेंट कर अभिनन्दित करना चाहते थे। यह मेरे लिए आश्चर्य एवं आनन्द का विषय था; और फिर अटल जी महाविद्यालय के सभाभवन में पधारे। प्राचार्य महोदय ने उनका सम्मान किया। तत्पश्चात् अटल जी ने खचाखच भरे सभाभवन में सहस्रों तरुण श्रोताओं एवं आचार्यवर्ग को सम्बोधित किया। उस दिन उन्होंने जो बोला, वह अधिकांश श्रोताओं को सम्भवतः आज भी याद होगा। उस दिन उनके भाषण का विषय था– 'देश के युवजन किधर ?' इस गम्भीर विषय को अटल जी ने बड़े मनोरञ्जक ढंग से प्रस्तुत किया था। उन्होंने देश के युवाओं की स्थिति स्पष्ट करने के लिए एक व्यंग्य चित्र के तीन भागों का उल्लेख किया। एक भाग में युवजनों की भीड़ हाथों में तख्तियाँ लिये आन्दोलन–मुद्रा में आगे बढ़ती हुई दिख रही थी। तख्तियों पर अंग्रेजी में लिखा था– 'नो फीस' अर्थात् वे फीस नहीं देना चाहते। चित्र के दूसरे भाग में ये आक्रोशित छात्रगण ही चित्रित थे; किन्तु इस चित्र में छात्रों के हाथों में थमी तख्तियों पर लिखा था– 'नो अटेण्डेन्स' अर्थात् वे कक्षाओं में ली जानेवाली उपस्थिति से मुक्त होना चाहते थे। और तीसरे चित्र में उन आन्दोलनकारियों की तख्तियों पर लिखा था, 'नो एक्जामिनेशन' अर्थात् परीक्षाएँ समाप्त हों।
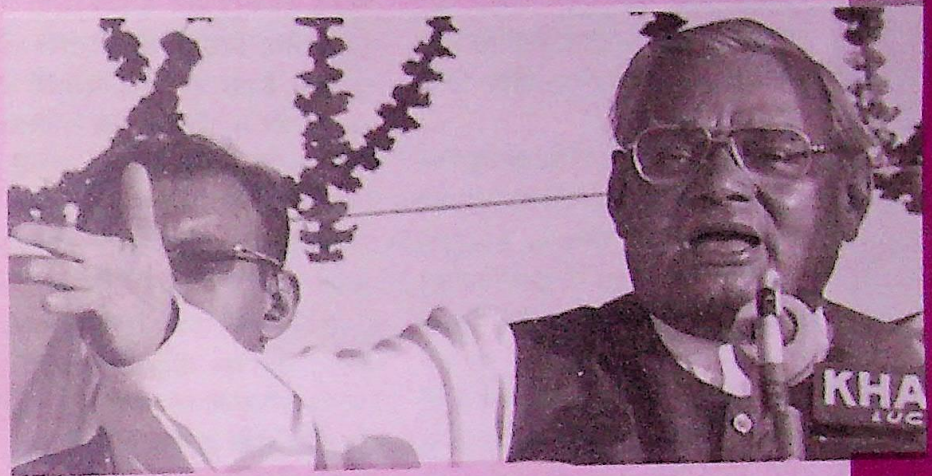
मुझे याद है कि अटल जी ने इन चित्रों को जिस भाव–भंगिमा के साथ प्रस्तुत किया था, और उसकी प्रस्तुति

में जिस भाषा–शैली का प्रयोग किया था, उससे समस्त श्रोतागण हँसते–हँसते लोट–पोट हो गये। और हँसी का यह सैलाब उनके भाषण के मध्य रह–रहकर आता रहा था; परन्तु उनका यह भाषण एक साथ ही भीषण रूप से हास्योत्तेजक एवं विचारोत्तेजक सिद्ध हुआ। उन्होंने हमें हमारी दिशाहीनता का बोध कराते हुए आत्मनिर्णय एवं राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की ओर बढ़ चलने के लिए प्रेरित किया था।

उस समय अपने संसदीय निर्वाचन के अनुभवों से भी उन्होंने छात्र–छात्राओं को पर्याप्त गुदगुदाया था। उन्होंने बताया था कि १६५७ के महा निर्वाचन में वह पार्टी के निर्देश पर तीन स्थानों से खड़े हुए थे और उनमें से एक स्थान पर वह हारे, दूसरे स्थान से जमानत गँवा बैठे और तीसरे स्थान से जीत गये। इस तरह एक बार में ही उन्हें हारने, बुरी तरह हारने और जीतने के अनुभव प्राप्त हो गये।

उस दिन मैंने अटल जी को दूसरी बार सुना था। भाषण के बाद चाय पर वे एक एकदम भिन्न व्यक्ति थे। प्राध्यापकों के प्रति अत्यन्त विनम्र एवं श्रद्धापूर्वक और छात्र–छात्राओं के प्रति असीम स्नेह एवं आत्मीयता से परिपूर्ण। उस दिन से वह हम सबके लिए प्रेरणा एवं अनुकरण के विषय बन गये।

उसी दिन भाई शैवाल सत्यार्थी के साथ मैं अटल जी के कमल सिंह का बाग स्थित निवास पर पहुँचा था। तब शैवाल ने अटल जी के साथ मेरा एक चित्र खींचा था। फोटोग्राफर के अभाव में मैंने भी शैवाल जी का एक चित्र खींचा था, अटल जी के साथ।

बाद में भी अटलजी से अनेक मित्रों के साथ मिलना–जुलना होता रहा। एक बार ६–१० जनवरी, १६६५ को वह शिन्दे की छावनी स्थित अपने निवास पर थे। बस, कुछ मित्रों ने उनसे मिलने का कार्यक्रम बना डाला था। दोपहर के कोई २–३ बजे होंगे। अटल जी भोजन कर विश्राम कर रहे थे; किन्तु हमें मिलने आया देखकर वह मुस्कराते हुए उठ बैठे। उस दिन उन्होंने ताशकन्द समझौते की आरम्भिक विफलता की सूचना दी थी। बाद में हम लोगों के मँझले भैया विद्या भैया (विद्यास्वरूप गुप्त) ने हँसते हुए उन्हें परामर्श दे डाला, 'अटल जी, आपका स्वास्थ्य दिन–ब–दिन समृद्ध होता जा रहा है। उसकी ओर भी थोड़ा ध्यान दें।'

अटल जी उनकी सलाह सुनकर ठठाकर हँस पड़े थे। तब मैंने सहज ही कहा था– जब संसदीय चुनाव आयेंगे, तब सब ठीक हो जायेगा ! इस पर अटल जी और जोर से हँसे थे, और फिर बोले थे– 'यह ठीक रहा। समस्या भी आपने रखी और समाधान भी आपका !'

अब से कोई १०–१२ वर्ष पूर्व वह मध्यभारतीय हिन्दी साहित्य सभा द्वारा आयोजित साहित्यकार–सम्मेलन में मुख्य अतिथि के रूप में पधारे थे। बाद में उन्होंने अपने भैया–भाभी की स्मृति में उत्कृष्ट साहित्य एवं संस्कृत भाषा के प्रोत्साहन हेतु दो पुरस्कार आरम्भ कराये। उन्होंने इस निमित्त बारह–बारह हजार रुपये की दो राशियाँ भी उपलब्ध करायीं। वह धनराशि सभा के सचिव खाते में जमा है और उसके ब्याज से उक्त दोनों पुरस्कार प्रतिवर्ष प्रदान किये जाते हैं।

अटल जी ग्वालियर के सपूत हैं। ग्वालियर को देश और दुनिया में गौरवान्वित किया है। देश के प्रधानमन्त्री होकर भी वह इस धरती को कभी नहीं भूले। ग्वालियर वासी उन्हें लेकर गर्वोन्नत हैं। यहाँ के अधिकांश जन अटल जी से सम्बन्धित कोई न कोई संस्मरण या घटना प्रसंग अपने मानस में सँजोये हुए हैं। ये यादें इतनी विपुल एवं बहुवर्णी हैं कि उन सबको याद रख पाना अटल जी के लिए भी बहुत मुश्किल होगा; किन्तु फिर भी उन्हें बहुत कुछ याद है। एक बार जब उनसे डॉ. श्रीधर गोपाल कुण्डे जी के अमृत–महोत्सव में मुख्यातिथि के रूप में पधारने हेतु अनुरोध किया गया, तो उन्होंने उसे तुरन्त स्वीकार किया और बोले 'कुंटे जी वहीं नयी सड़क पर ही रहते हैं न, ऊपरी मञ्जिल में ? वस्तुतः उन्हें कुछ नहीं भूला। ग्वालियर की बेशुमार स्मृतियाँ उनके मन में सुरक्षित हैं। यहाँ के साहित्यकारों में प्रो. रामकुमार चतुर्वेदी चञ्चल, श्री देवेन्द्र नारायण वर्मा, श्री शैवाल सत्यार्थी आदि से उनकी समीपता आज भी कायम है। ☐

– डी.एच./२५, दीनदयाल नगर, ग्वालियर (म.प्र.)

— अटल बिहारी वाजपेयी

जगन्नाथ राव, सचमुच में 'जगन्नाथ' ही थे

श्री जगन्नाथ राव जोशी पर मराठी भाषा में प्रकाशित जीवन चरित्र ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद आपके हाथों में है। वैसे भी श्री जगन्नाथराव जोशी के बारे में बहुत कम लिखा गया है, हिन्दी में तो लगभग नही ही। ऐसे में यह पुस्तक एक बड़े अभाव की पूर्त्ति करने में सहायक हो सकेगी।

देश और समाज के लिए जीने–मरने वाले असंख्य होते हैं। उन असंख्यों में से एक थे जगन्नाथ राव जोशी। मगर अपने आप में बिरले। ऐसे बिरले कि शून्य को भी अपनी सक्रियता से भर दिया। दक्षिण भारत में आज राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, पूर्ववर्त्ती जनसंघ और वर्त्तमान भारतीय जनता पार्टी का जो आभामण्डल देखने को मिलता है, उस यज्ञ की समिधा में जगन्नाथ राव की आहुति भी शामिल है।

उनकी हृष्ट–पुष्ट काया में एक संवेदनशील और कोमल मन था। देश प्रेम की भावनाओं से भरा था। इतना संवेदनशील कि दूसरों के दुःख–दर्द से वह द्रवित हो उठता था; परन्तु साथ ही इतना फौलादी कि जो ठाना, उसे करके माना। यही फौलादी संकल्प गोवा मुक्ति संग्राम में गोवा की जेल में यातनाओं को हँसते–हँसते सह गया। प्रत्येक संघर्ष ने जगन्नाथ राव के व्यक्तित्व को कुन्दन बनाया। अपने व्यक्तित्व से लोगों का मन जीतनेवाले जगन्नाथ राव 'कर्नाटक केसरी' कहलाये। वे ऐसे 'केसरी' थे, ज़ो दिलों पर राज करते थे।

जनसंघ के काम को आगे बढ़ाने के लिए शुरुआत में जो तरुणों की टोली बनी थी, जगन्नाथ राव उसके मस्त, मगर काम के प्रति संजीदा रहनेवाले सदस्य थे। उनकी विनोद शैली मनों को गुदगुदाती थी; मगर जहाँ चोट करना चाहती थी, वहाँ चोट करती थी। वे स्वयं कहा करते थे– "मैं प्रचारक हूँ।" राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विचारों का प्रचार करनेवाला। वे प्रचारक तो थे ही मगर विचारक भी थे। युवावस्था में उन्होंने जो संकल्प लिया, वह जीवनपर्यन्त निभाया। जगन्नाथ राव ने सिखाया कि देश के लिए मरने के साथ–साथ जीना भी जरूरी है। विनोदी स्वभाव, प्रभावशाली वक्ता, कुशल संगठक, सफल आयोजक, प्रखर सांसद और एक सरल मगर अपने विचारों, आदर्शों के प्रति समर्पित एवं ध्येयनिष्ठ व्यक्ति के रूप में जगन्नाथ राव जोशी ने अपनी अलग ही छाप छोड़ी है।

उनका जीवन चरित्र जहाँ आनेवाली पीढ़ियों को ध्येयमार्ग पर चलने हेतु प्रेरित करेगा, वहीं स्वतन्त्र भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में उनके योगदान को सही परिप्रेक्ष्य में आँकने में सहायक सिद्ध होगा। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जगन्नाथ राव जोशी सचमुच में 'जगन्नाथ' ही थे। □

उनकी याद करें

— अटल बिहारी वाजपेयी

जो बरसों तक लड़े जेल में उनकी याद करें,
जो फाँसी पर चढ़े खेल में उनकी याद करें।

याद करें कालापानी को,
अंग्रेजों की मनमानी को,
कोल्हू में जुट तेल पेरते,
सावरकर से बलिदानी को।

याद करें बहरे शासन को,
बम से थर्राते आसन को,
भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु,
के आत्मोत्सर्ग पावन को।
अन्यायी से लड़ें, दया की मत फरियाद करें,
उनकी याद करें।

याद करें हम पुर्तगाल को,
जुल्म सितम के तीस साल को,
फौजी बूटों तले क्रान्ति की
सुलगी चिनगारी विशाल को।

याद करें सालाजारों को,
जारों के अत्याचारों को,
साइबेरिया के निर्वासित,
शिबिरों के हाहाकारों को।
स्वतन्त्रता के नये समर का शंख निनाद करें,
उनकी याद करें।

बलिदानों की बेला आई,
लोकतन्त्र दे रहा दुहाई,
स्वाभिमान से वही जियेगा,
जिससे कीमत गई चुकाई।

मुक्ति माँगती शक्ति संगठित,
युक्ति सुसंगत, भक्ति अकम्पित
कृति तेजस्वी, धृति हिमगिरि–सी
मुक्ति माँगती गति अप्रतिहत
अन्तिम विजय सुनिश्चित, पथ में क्यों अवसाद करें,
उनकी याद करें।

– अटलबिहारी वाजपेयी

राष्ट्रीय एकता के प्रश्न पर दलीय राजनीति से ऊपर उठें

राष्ट्रीय एकता के संरक्षण तथा संवर्द्धन के उपायों पर विचार करने के लिए एक राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन, देर से ही क्यों न हो, सही दिशा में एक कदम है और उसका स्वागत होना चाहिए। सम्मेलन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय एकता के प्रश्न को दलीय अथवा राजनीतिक दृष्टिकोण से न देखा जाये तथा जिनको हम इस विषय में सर्वाधिक दोषी मानते हैं, उनके प्रति सहिष्णुता और सहानुभूति का भाव रखा जाये। सम्मेलन में होनेवाली चर्चा प्रचार अथवा प्रसिद्धि के लिए न होकर, एक–दूसरे के दृष्टिकोण को समझने के लिए होनी चाहिए।

राष्ट्र क्या है ?

राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यक है कि हम 'राष्ट्र' की स्पष्ट कल्पना लेकर चलें। राष्ट्र कुछ सम्प्रदायों अथवा जनसमूहों का समुच्चय मात्र नहीं, अपितु एक जीवमान इकाई है, जिसे जोड़–तोड़ कर नहीं बनाया जा सकता। इसका अपना व्यक्तित्व होता है, जो उसकी प्रकृति के आधार पर कालक्रम के विकास का परिणाम है। उसके घटकों में राष्ट्रीयता की यह अनुभूति मातृभमि के प्रति भक्ति, उसके जन के प्रति आत्मीयता और उनकी संस्कृति के प्रति गौरव के भाव में प्रकट होती है। इसी आधार पर अपने–पराये, शत्रु–मित्र, अच्छे–बुरे और योग्य–अयोग्य का निर्णय होता है। जीवन की इन निष्ठाओं तथा मूल्यों के चारों ओर विकसित इतिहास, राष्ट्रत्व की भावना घनीभूत करता हुआ उसे बल प्रदान करता है। उसी से व्यक्ति को त्याग और समर्पण की, पराक्रम और पुरुषार्थ की सेवा और बलिदान की प्रेरणा मिलती है।

भारत एक प्राचीन राष्ट्र

भारत एक प्राचीन राष्ट्र है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति से इसके चिरकालीन इतिहास में एक नये अध्याय का आरम्भ हुआ है। किसी नवीन राष्ट्र का जन्म नहीं। नया राष्ट्र बनाने की चर्चा का परिणाम जीवन मूल्यों की अवहेलना और आत्म–विस्मृति में हुआ है। फलतः हमारे राष्ट्रीय मानस में एक गाँठ पड़ गयी है और द्वैधी भाव की सृष्टि हुई है। घर और बाहर के, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन के, अलग–अलग आदर्श बन गये हैं। भारत के ऋषियों–महर्षियों, स्मृतिकारों, पुराण निर्माताओं, साधुओं–संन्यासियों, कवियों–कलाकारों, सम्राटों–सेनापतियों और सन्तों–सुधारकों ने जिस एकात्मक जीवन के ताने–बाने को बुना था, आज वह उपेक्षा तथा उपहास का विषय बनाया जा रहा है। जिन उपदानों ने हमें हजारों साल तक एक बनाये रखा जिनके कारण हम बाहरी आक्रमण और आन्तरिक विघटन के बावजूद अपने अस्तित्व को कायम रख सके, उन्हें आज तिरस्कृत किया जा रहा है। यह एकता की प्राप्ति का नहीं, बची–खुची एकता को भी खतरे में डालने का मार्ग है। आवश्यक है कि हम अपने राष्ट्र की प्राचीनता को मान्य करें और उसके सही स्वरूप को समझें।

भारतीय राष्ट्र का स्वरूप

भारतीय राष्ट्र का मूल स्वरूप राजनीतिक नहीं, सांस्कृतिक है। सांस्कृतिक एकता की अनुभूति ही राजनीतिक एकता के लक्ष्य की प्रेरक शक्ति रही है। राजनीतिक एकता के अभाव ने देश की सांस्कृतिक धारा को कभी खण्डित नहीं होने दिया। जहाँ एक ओर हम भारत की संस्कृति से अभिन्न रूप से सम्बद्ध अनेक राजनीतिक इकाइयों के प्रति उदासीन तथा सहिष्णु रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर भारतीय संस्कृति से भिन्न, उसके विकृत अथवा विरोधी भाव पर आधारित, कोई भी राजनीतिक सत्ता हमें मान्य नहीं हुई। हम सदैव उसके विरुद्ध संघर्षरत रहे हैं।

विविधता में एकता भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। हमने एकरूपता की नहीं, अपितु एकता की कामना की है। फलतः देश में अनेक उपासना पद्धतियों, पन्थों, दर्शनों, जीवनप्रणालियों, भाषाओं, साहित्य और कला की शैलियों का विकास हो सका। वे हमारी संस्कृति की समृद्धि और सम्पन्नता की द्योतक हैं। हमें उनके प्रति अपनत्व और गौरव का भाव लेकर चलना होगा; किन्तु विविधता के नाम पर विभाजन को प्रोत्साहन देना भूल

होगी। भारतीय संस्कृति कभी किसी एक उपासना–पद्धति से बँधी नहीं रही और न उसका आधार प्रादेशिक ही रहा है। मजहब अथवा क्षेत्र के आधार पर पृथक् संस्कृति की चर्चा तर्कविरुद्ध ही नहीं, प्रत्युत् भयावह भी है; क्योंकि वह राष्ट्रीय एकता की जड़ पर ही कुठाराघात करती है।

क्षेत्र, प्रदेश, जाति, पन्थ, भाषा, भूषा, आदि के आधार पर भारतीय जन की पृथकता की कल्पना भ्रामक है। उनके आधार पर भारत में अनेक राष्ट्रों अथवा राष्ट्रीयताओं के अस्तित्व का विचार भी मूलतः अशुद्ध है। हम एक राज्य में रहने के कारण एक नहीं हैं; अपितु हम एक हैं, इसलिए भारत एक राज्य है।

राष्ट्र के प्रति अनन्य निष्ठा ही राष्ट्रीयता का निकष होने के कारण भारत के सभी जनों को अपनी निष्ठाओं को इसके आधीन बनाना होगा। इसके लिए दोहरा प्रयत्न आवश्यक है। एक ओर जहाँ अपने प्रदेश, पन्थ अथवा जाति के प्रति निष्ठा रखनेवालों को राष्ट्रनिष्ठ बनाना होगा, वहीं दूसरी ओर भारत से बाहर निष्ठा रखनेवालों को फिर से पाकिस्तान–परस्त हों, अथवा रूस और चीन के भक्त, उन्हें उससे विरत करना होगा।

राष्ट्रीय एकीकरण और मुसलमान

उपासना, मत और ईश्वर सम्बन्धी विश्वास की स्वतन्त्रता भारतीय संस्कृति की परम्परा रही है। भारतीय संविधान ने भी इसे स्वीकार किया है; किन्तु मजहब के आधार पर किसी को 'अल्पमत' अथवा 'बहुमत' मानना न तो राष्ट्रीय एकात्मता के लिए हितावह है और न सत्यसंगत। मुसलमान अथवा ईसाई कहीं बाहर से नहीं आये। उनके पूर्वज हिन्दू ही थे। मजहब बदलने से न राष्ट्रीयता बदलती है और न संस्कृति में परिवर्त्तन होता है। मुसलमानों अथवा ईसाइयों को अल्पमत मानने का अर्थ होगा मजहब को राजनीति, अर्थ, समाज–जीवन के सभी क्षेत्रों में एक विभाजक रेखा स्वीकार करना। यह तो प्रच्छन्न रूप से द्विराष्ट्रवाद अथवा बहुराष्ट्रवाद को मान्यता देना होगा।

सखेद कहना पड़ता है कि भारतीय राष्ट्रवाद की साधना में मुस्लिम मतावलम्बियों का व्यापक सहयोग नहीं मिल पाया। उन्होंने राजनीति और मजहब को एक मान कर ही अधिकांश प्रयत्न किये। परकीय सत्ता के साथ अपने को एकरूप करने के कारण मुस्लिम समाज के जीवन में अनेक ऐसी विकृतियाँ आ गयीं, जिनका इस्लाम के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ के समाज से अपने आपको पृथक् सिद्ध करने की लालसा में धीरे–धीरे उन्होंने उन सब प्रथाओं, रहन–सहन की पद्धतियों एवं रीति–नीतियों से अपने को अलग कर लिया जो यहाँ के जन को इस भूमि से जोड़े हुए हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने कृष्ण को अपना पूर्वज मानने से भी इनकार कर दिया और यहाँ के परम्परागत त्योहारों से, जिनका सम्बन्ध किसी मजहब से न होकर यहाँ की मिट्टी और मौसम से है, अपने को दूर रखा।

इस प्रसंग में पारसियों का उल्लेख करना आवश्यक है। अपने मजहब को सुरक्षित रखते हुए भी उन्होंने अपने आप को पूर्णतः राष्ट्रीय बना लिया है। उन्होंने न तो कभी भेदभाव की शिकायत की है और न कभी संरक्षण ही माँगा है। अपनी योग्यता और समाजनिष्ठा के बल पर उन्होंने देश का सभी क्षेत्रों में नेतृत्व किया है। उसका उदाहरण अनुकरणीय है।

(२)

वस्तुतः राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या संकुचित और संकीर्ण निष्ठाओं को सार्वदेशिक निष्ठाओं द्वारा स्थानापन्न करने की समस्या है। इसके लिए लोगों के दिलों और दिमागों को क्षुद्र दायरों से निकाल कर व्यापक धरातल पर लाना होगा। कुल मिलाकर, जन सामान्य का हृदय काफी स्वस्थ है। आज यदि कहीं कमी दिखायी देती है, तो सामान्य जन में नहीं, राजनीतिक दलों और उनके नेताओं में दिखाई देती है। मातृभूमि की एकता और अखण्डता के सम्बन्ध में युग–युगों से चली आयी श्रद्धा को १९४७ के विभाजन से भारी धक्का लगने के बाद भी जनता ने रियासतों के एकीकरण, विस्थापितों के पुनर्वास, गोवामुक्ति आन्दोलन, चीनी आक्रमण के प्रतिरोध आदि विषयों में अपनी राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्त अत्यन्त ही प्रबल और भावात्मक रूप में की है। जब भी अवसर आया है वह भाषा, पन्थ, जाति आदि सब भावो से ऊपर उठकर खड़ी हुई है; किन्तु अनेक राजनीतिक नेता सत्ता बनाये रखने अथवा उसकी प्राप्ति की लालसा में उसकी छोटी और क्षुद्र भावनाओं को भडका देते हैं। भाषाई प्रान्तों को लेकर किये गये आन्दोलन, असम के झगड़े, जबलपुर के दुर्भाग्यपूर्ण काण्ड का अतिशयोक्तिपूर्ण प्रचार, नदियों के पानी के प्रश्न पर भावोत्तेजक वक्तव्य आदि अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं। इसे रोकने के लिए भारतीय दण्ड–विधान तथा जन–प्रतिनिधित्व विधान में संशोधन किये गये हैं; किन्तु वे अनावश्यक ही नहीं, अप्रभावी भी सिद्ध होंगे और सत्तारूढ़ दल द्वारा उनके दुरुपयोग की आशंका बनी रहेगी। तथाकथित साम्प्रदायिक दलों को गैरकानूनी घोषित करने की भी चर्चा चल रही है; किन्तु यह नकारात्मक कदम होगा और इससे ये दल या तो भूमिगत हो जायेंगे अथवा दूसरे चेहरे लगातार सामने आयेंगे। स्पष्ट है कि

विघटनात्मक प्रवृत्तियों से लड़ना होगा और यह लड़ाई राजनीतिक, आर्थिक, शिक्षा तथा प्रशासन अनेक मोर्चों पर लड़ी जायेगी।

राजनीतिक

सभी प्रमुख राजनीतिक दल यह संकल्प करें कि साम्प्रदायिक तथा मजहबी संगठनों से किसी प्रकार का गठबन्धन नहीं करेंगे और न चुनाव के अवसर पर उम्मीदवारों का चयन सम्प्रदाय तथा जाति विशेष के आधार पर करेंगे। किसी सम्प्रदाय विशेष की जनसंख्या के आधार पर उस सम्प्रदाय के उम्मीदवारों का अनुपात तय करना और फिर उन उम्मीदवारों को ऐसे चुनाव क्षेत्रों में खड़ा करना, जिनमें उस सम्प्रदाय की बहुलता है, साम्प्रदायिकता का द्योतक है। उम्मीदवारों का चयन उनकी योग्यता तथा दल के सिद्धान्त और कार्यक्रम में उनकी निष्ठा के आधार पर होना चाहिए, न कि साम्प्रदायिक तथा जातीय भावनाएँ उभाड़ कर उसके विजयी होने की सम्भावना का विचार कर।

प्रमुख राजनीतिक दल यह भी निश्चय करें कि अपने सदस्यों को ऐसे सम्मेलनों में भाग लेने से रोकेंगे जिनका स्वरूप साम्प्रदायिक अथवा मजहबी हो और जिनमें किसी सम्प्रदाय विशेष के लिए पृथक् राजनीतिक और आर्थिक सुविधाओं और विशेषाधिकारों की माँग की जाये। असाम्प्रदायिक राज्य के आदर्श और संविधान की धारा १४, १५, १६ के विपरीत यदि किसी नागरिक अथवा नागरिक समूह के प्रति भेदभाव की नीति बरती जाती है, तो छानबीन के पश्चात् उसके निराकरण का यत्न किया जाये; किन्तु उसके लिए किसी पृथक् साम्प्रदायिक मञ्च की स्थापना अनुचित हैं। स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजी राज्य की साम्प्रदायिक राजनीति के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता और न विशेष सुविधाएँ देकर किसी सम्प्रदाय को शेष समाज से पृथक् और परमुखापेक्षी बनाना ही श्रेयस्कर हो सकता है।

जिन दलों तथा संगठनों की सदस्यता सभी भारतीयों के लिए खुली नहीं है और जो किसी विशेष मतावलम्बियों के हितों के संरक्षण तथा संवर्द्धन के लिए कार्यरत हैं, उन्हें राजनीतिक उद्देश्यों की दृष्टि से मान्य न किया जाये और न ही उनके द्वारा प्रस्तुत राजनीतिक स्वरूप की माँगों तथा शिकायतों पर विचार किया जाये। इससे उन्हें अपने साम्प्रदायिक स्वरूप को त्यागने के लिए विवश होना पड़ेगा और असाम्प्रदायिक राजनीति को बल मिलेगा।

आर्थिक

स्वतन्त्रता के पश्चात् जनता की आशाओं और अपेक्षाओं में अत्यधिक वृद्धि हुई हैं; किन्तु आर्थिक विकास की गति धीमी और असन्तुलित है। फलतः व्यक्ति तथा क्षेत्र–क्षेत्र के बीच आमदनी और सम्पत्ति की विषमता बढ़ी है। विघटनात्मक शक्तियों ने इसका लाभ उठाया है। उत्तर–दक्षिण का विवाद और मुस्लिम सम्मेलन में उद्योग और वाणिज्य के क्षेत्र में मुसलमानों के प्रति 'योजनाबद्ध भेदभाव' के आरोप इसके उदाहरण हैं। राष्ट्रीय एकीकरण के लिए यह आवश्यक है कि देश के सभी भागों का त्वरित और सन्तुलित विकास किया जाये और प्रत्येक नागरिक के लिए 'समान अवसर' की संवैधानिक गारण्टी को कार्यान्वित किया जाये। बढ़ती हुई बेकारी, विशेषतः शिक्षितों की बेरोजगारी बड़ी खतरनाक है। राज्य बेकारों को काम या भत्ता देना स्वीकार करें। शिक्षित बेकारों से इस योजना का प्रारम्भ किया जा सकता है।

शिक्षा

राष्ट्रीय एकीकरण में सही प्रकार की शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह खेद का विषय है कि अब तक शिक्षा की उपेक्षा हुई है। न तो राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा का पुनर्गठन हुआ है और न उसका विस्तार ही। प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के संविधान के निर्देश का अभी तक पूर्ण पालन नहीं किया गया है। यदि कहीं प्राथमिक पाठशालाएँ खोल दी गयी हैं, तो वहाँ जूनियर और सीनियर हाईस्कूलों की कमी है। विश्वविद्यालयों के छात्रों के प्रवेश को मर्यादित किया जा रहा है; किन्तु तकनीकी तथा औद्योगिक प्रशिक्षण की पर्याप्त सुविधा नहीं है।

राष्ट्रीय एकता के लिए यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण देश की शिक्षा व्यवस्था में एकरूपता हो। सम्पूर्ण शिक्षा क्रम का निर्धारण और विश्वविद्यालयीन शिक्षा केन्द्रीय विषय हो। शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए क्षेत्रों को विशेष सहायता दी जाये। अन्तरप्रान्तीय स्तर पर शिक्षकों तथा छात्रों का आदान–प्रदान बढ़ाया जाये। शिक्षकों में पर्याप्त मात्रा में अन्य प्रदेशों के शिक्षकों का समावेश हो। अखिल भारतीय शिक्षा सेवा गठित की जाये।

भाषा

राष्ट्रीय एकात्मता के मार्ग में राजकाज तथा शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी का प्रचलन एक बड़ी बाधा है। यदि एक तरफ डेढ़ फीसदी अंग्रेजी जानने वालों की ही बपौती नहीं रखना है और उसके अनुष्ठान में भारत की ४४ करोड़ जनता को सहभागी बनाना है, तो अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषाओं का प्रयोग आवश्यक है। यह कहना कि हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषाएँ अभी तक विकसित नहीं हैं, इन भाषाओं के अज्ञान

का द्योतक है। भाषाएँ प्रयोग से पनपती तथा पुष्ट होती हैं। अंग्रेजी को कयामत तक चलाने और हिन्दी को कभी न लाने की घोषणाएँ विकृत मस्तिष्कों की उपज हैं। राष्ट्रीय निर्माण में भाषा एक विधायक तत्त्व है, जिसकी पूर्ति किसी विदेशी भाषा से नहीं हो सकती।

सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक सामान्य पारिभाषिक तथा वैज्ञानिक शब्दावली तैयार की जाये जिसका आधार मुख्यतया संस्कृत हो। सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि उपयोगी हो सकती है; किन्तु इसकी माँग अहिन्दी प्रान्तों से आनी चाहिए। इस सम्बन्ध में रोमन की वकालत सर्वथा हास्यास्पद है। यदि कोई लिपि यह स्थान ले सकती है, तो वह देवनागरी ही है; किन्तु भाषा, लिपि आदि के सम्बन्ध में ऐसा कोई पग उठाना जो देश की सभी भाषाओं तथा लिपियों के प्रति आत्मीयता और उनके राष्ट्रीय होने के सम्बन्ध में लोगों में अनायास आशंका उत्पन्न कर दे, उचित नहीं होगा। संस्कृत भाषा तथा साहित्य का व्यापक पठन–पाठन भाषाओं के बीच एकात्मता को दृढ़ बनायेगा।

इतिहास

राष्ट्रीय चेतना जगाने के लिए भारतीय इतिहास का सही अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। इतिहास को हिन्दू–मुस्लिम और ब्रिटिश कालखण्डों में बाँटना उचित नहीं है। वस्तुतः इतिहास शासकों का नहीं जनता का होना चाहिए। साम्प्रदायिक आधार पर इतिहास के वर्गीकरण का फल यह हुआ है कि महमूद गजनवी, मोहम्मद गोरी और औरंगजेब के अत्याचारों को भी गौरव से देखने की प्रवृत्ति एक वर्ग में बढ़ी है। ये आक्रमणकारी मुसलमान थे यह ठीक है; किन्तु उन्हें इस्लाम का प्रतिनिधि नहीं मानना चाहिए। उनकी मूल प्रेरणा लूटपाट करने अथवा अपना प्रभुत्व स्थापित करने की थी, जिस पर मजहब का मुलम्मा चढ़ा था। जहाँ मुसलमानों के लिए यह आवश्यक है कि वे इन आक्रमणकारी और अत्याचारी शासकों को स्वयं का पूर्वज मानने की भूल न करें, वहाँ अन्य जनों को भी उनके आक्रमणों तथा अत्याचारों के लिए सम्पूर्ण मुस्लिम समाज को दोषी या जिम्मेदार समझना ठीक नहीं होगा। वस्तुतः आज के मुसलमान तो उन अत्याचारों के शिकार होने के कारण सहानुभूति के पात्र हैं तथा शेष समाज को अपनी निर्बलता पर लज्जा आनी चाहिए कि वह उन्हें अत्याचारों से नहीं बचा पाया।

इतिहास में सभी प्रदेशों के महापुरुषों की जीवन–गाथाओं का समावेश हो। उत्तर के सुशिक्षित व्यक्ति भी केरल, तमिलनाडु तथा असम के उन स्वतन्त्रता प्रेमियों के नाम तक नहीं जानते, जिन्होंने अंग्रेजी साम्राज्यवाद से डट कर लोहा लिया था। हिंसा–अहिंसा के आधार पर अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतन्त्रता संग्राम के कुछ पहलुओं को दबाना और कुछ को उभारना अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। क्रान्तिकारियों में सभी मजहबों और प्रान्तों के व्यक्ति शामिल थे। उनके जीवन–चरित्र का अध्ययन सार्वदेशिक दृष्टिकोण के विकास में सहायक होगा।

प्रशासन

प्रत्येक नागरिक को विना किसी भेदभाव के शिक्षा, सेवा, उद्योग और व्यापार में समान अवसर दिया जाये और यदि भेदभाव अथवा पक्षपात के आरोप लगाये जाते हैं, तो व्यक्तिगत आधार पर उनकी जाँच कर उन्हें दूर किया जाये। सभी नियुक्तियाँ तथा तरक्कियाँ, योग्यता और क्षमता के आधार पर हों। मजहब, जाति अथवा क्षेत्र के आधार पर किसी को संरक्षण अथवा विशेष सुविधाएँ न दी जायें। पिछड़ेपन की कसौटी केवल आर्थिक हो।

कांग्रेस द्वारा नियुक्त राष्ट्रीय एकीकरण समिति ने तथाकथित अल्पसंख्यक समाजों, जिनसे उसका अभिप्राय मुख्यतः मुसलमानों से है, को रेलवे, डाकतार सुरक्षा, उद्योगों तथा सेवाओं और पुलिस में अधिक स्थान और जन सेवा अभागों में प्रतिनिधित्व देने की माँग करके साम्प्रदायिकता को बल प्रदान किया है। यदि नियुक्तियों तथा तरक्कियों में मजहब अथवा पन्थ देखा जायेगा, तो 'सेवाओं में मजहबी तथा साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों को प्रभावी रूप से रोकने की समिति की सिफारिश को कैसे कार्यान्वित किया जायेगा ? सब मुसलमान आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए नहीं हैं और न सब हिन्दू ही समृद्ध हैं। सेवाओं में साम्प्रदायिक अनुपात को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पुनरुज्जीवित करने का यत्न राष्ट्रीय एकता के लिए मारक सिद्ध होगा।

अन्य उपाय

एक राष्ट्रीयता का भाव जाग्रत करने में तीर्थ यात्राओं ने बड़ा योग दिया था। उन्हें प्रोत्साहित किया जाये और उनमें भाखड़ा, भिलाई आदि स्थानों का भी समावेश किया जाये, जिससे सांस्कृतिक एकता के साथ–साथ आर्थिक प्रगति का चित्र भी लोगों के सम्मुख आ सके। सार्वदेशिकता का भाव जाग्रत करनेवाली अन्य प्राचीन परम्पराओं तथा संस्थाओं को, उनका रूढ़िवादी स्वरूप बदलकर, पुनरुज्जीवित तथा बलिष्ठ बनाना चाहिए।

राष्ट्रीय त्योहार, जैसे दशहरा, दिवाली, संक्रान्ति, वैशाखी, ओणम आदि को, जिनका इस्लाम या ईसाइयत से कहीं विरोध नहीं आता, सामूहिक रूप से मनाया जाये।

विभिन्न सम्प्रदायों के बीच

सद्भावना बनाये रखने के लिए यह वाञ्छनीय है कि उन पूजा स्थानों को, जो बलात् एक के द्वारा दूसरे से छीन लिये गये हों, सहर्ष वापस कर दिया जाये।

गोवंश के वध को रोकने के लिए कानून बने हैं, किन्तु उनका व्यापक पैमाने पर उल्लंघन होता है, जिससे सम्बन्ध बिगड़ते हैं और समाज विरोधी तत्त्वों को जनभावनाओं को भड़काने का मौका मिलता है। इन कानूनों का दृढ़ता से पालन होना चाहिए और मुसलमानों को स्वेच्छा से गोवध छोड़ देना चाहिए।

समाज में आये दिन होने वाले समाजविरोधी कृत्यों का व्यक्तिगत आचार पर विचार होना चाहिए, कुकृत्य करनेवाले के मजहब अथवा सम्प्रदाय के आधार पर नहीं। ऐसा करने से पाप अथवा जुर्म करनेवाला व्यक्ति लाञ्छन और निन्दा का भागी बनने के स्थान पर प्रशंसा का पात्र बन जाता है। साथ ही वह घटना साम्प्रदायिक तनाव का कारण हो जाती है।

इन सुझावों की संख्या और भी बढ़ायी जा सकती है; किन्तु मुख्य बात राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में सही दृष्टिकोण अपनाकर उसमें साधक होने वाले उपायों का धैर्यपूर्वक अवलम्बन और बाधक बनने वाले उपादानों का दृढ़तापूर्वक निर्मूलन करने की है। वे सभी पग जिनसे सार्वदेशिक निष्ठाओं की पुनर्प्रतिष्ठा तथा उनके प्रति अभिमान का भाव जाग्रत हो, उठाने चाहिए। इस दृष्टि से चीन, पाकिस्तान तथा पुर्तगाल द्वारा हमारी स्वतन्त्रता तथा सर्वप्रभुता को जो चुनौती दी गयी है, उसका सफल प्रतिकार जनमानस को मजहब, भाषा तथा प्रदेश की संकुचित निष्ठाओं से निकाल कर राष्ट्रीय धरातल पर अनुप्रमाणित कर सकता है।

राष्ट्रीयता भावात्मक, अनुभूति होने के कारण उसका कोई अंशात्मक मापन सम्भव नहीं है। भारत जैसे विशाल और लोकतन्त्रीय देश में यह सर्वथा असम्भव है कि यदा-कदा छुटपुट अवाञ्छनीय घटनाएँ न हों। आवश्यकता है कि उनका राजनीतिक लाभ उठाने के लोभ का संवरण किया जाये और उन्हें प्रतिनिधि स्वरूप ही मानकर प्रचार-तन्त्र के द्वारा बड़ा न बनाया जाये। राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में अत्यधिक भयाक्रान्त तथा आशंकित होकर चलने से काम नहीं चलेगा। सहिष्णुता तथा उदार दृष्टिकोण लेकर रचनात्मक रूप से राष्ट्रीय निष्ठाओं को बलवती करते गये तो हम निश्चित ही सफल होंगे; क्योंकि हमारी राष्ट्रीयता की जड़ें काफी गहरी और मजबूत हैं। □

– डॉ. भगवती प्रसाद मिश्र 'अतीत'

बटेश्वर की यादें

यह बात उन दिनों की है, जब मैं मानव चिकित्सालय जिला पञ्चायत आगरा, बटेश्वर में चिकित्सा अधिकारी था। फिरोजाबाद संसदीय सीट पर श्री कठेरिया जी सांसद चुने गये थे। वे भगवान् बटेश्वर नाथ पर एक विशाल घण्टा चढ़ाने व शिव अभिषेक करने आये थे। मुख्य अतिथि थे माननीय अटल बिहारी वाजपेयी जी। शिवाभिषेक के उपरान्त एक जनसभा का भव्य आयोजन था। कठेरिया जी ने बड़े ओजस्वी स्वर में माननीय अटल जी की प्रशंसा की और कहा कि माननीय श्री अटल जी ने आज शिव को ऐतिहासिक घण्टा भेंट किया। जब श्री अटल जी खड़े हुए अपनी चिर–परिचित शैली में सम्भाषण करने, तो समुच्च समुदाय ने खड़े होकर करतल ध्वनि से अभिनन्दन किया। वे बोले, भाई, अभी–अभी कठेरिया जी ने कहा, वैसा नहीं है। भगवान् बटेश्वर पर घण्टा प्रभुदयाल जी कठेरिया ने ही चढ़ाया है, मैंने तो बस घण्टरिया बजायी। यह सत्योक्ति सुन, सारा जनसमुदाय हँसी में लोटपोट हो गया। माननीय अटल जी ने यमुना किनारे पर अपने बचपन की कई सुखद स्मृतियाँ सुनाकर, इस क्षेत्र से अपनी अटूट आस्था की सहज अभिव्यक्ति की।

दूसरा संस्मरण है, बटेश्वर, रेलवे स्टेशन के उद्घाटन के समय का। अपूर्व जन सैलाब, अनोखी सुरक्षा व्यवस्था, सारा वातावरण अटलमय। उनके दर्शनों को उत्सुक ग्राम्य समाज। समापन के पश्चात् भोजन व विश्राम था, उनके बहनोई श्री मिश्र के पैतृक आवास पर। बाहर एक भव्य पण्डाल, जहाँ वैदिक मन्त्रों से उनका अद्भुत अभिनन्दन हुआ। मैं व उपजिला अधिकारी, आवास पर नियुक्त थे। निःस्पृह व सहजता के आचरण का प्रथम बार साक्षात्कार हुआ उस दिन। सब का परिचय लिया प्रसन्न–मुद्रा में और भोजन करके घण्टे भर विश्राम कर, विदा हुए।

अटल जी का पैतृक दिव्य तीर्थ

बटेश्वर पौराणिक महातीर्थ है। योग–योगेश्वर की पैतृक राजधानी होने से, वह सब तीर्थों का भाञ्जा कहा जाता है। अवतारों की संगम स्थली है– बटेश्वर। मृत्युञ्जयी बटेश्वर नाथ जी के ४३ भव्य मन्दिर हैं। कालिन्दी के तीर पर, जो उनकी शाश्वत उपस्थिति के प्रमाण हैं, जहाँ वर्ष भर शिवभक्त भाव विभोर हो सम्पूर्ण भारत से आकर अर्चना करते हैं। योगेश्वर कृष्ण के पितामह सूरसेन की राजधानी थी द्वापर में। जहाँ कुन्ती बुआ जन्मीं व पलीं। मनमोहन कृष्ण के पिता वसुदेव की जन्मस्थली का गौरव भी इसे प्राप्त है। मुरलीधर के चचेरे भाई बाइसवें तीर्थंकर श्री भगवान् नेमिनाथ का भी यह जन्म–स्थल है और इसी बृज भूमि पर मा. श्री अटल बिहारी वाजपेयी का पैतृक आवास है, जिन्होंने राजनीति को एक आदर्शपूर्ण दिशा दी।

– तुलसी विहार, ग्वालियर (म.प्र.)

विशेष सूचना

'राष्ट्रधर्म' का आगामी (जुलाई) अङ्क 'कहानी–व्यंग्य' विशेषाङ्क होगा।

–सम्पादक

–अटल बिहारी वाजपेयी

कोटि चरण बढ़ रहे ध्येय की ओर निरन्तर

(१)

केशव के आजीवन तप की यह पवित्रतम धारा।
साठ सहस ही नहीं, तरेगा इससे भारत सारा।।
यह नव गंगा तोड़ चली है बाधाओं की कारा।
एक जन्हु क्या ? यहाँ पूर्ण पशुबल ने सिर दे मारा।
भू पर नहीं कोटि हृदयों में इसकी धार प्रबल है।
इसे बाँध रखने का पापी यत्न हुआ निष्फल है।
तोड़ हिमालय, चीर जटाएँ चली सिन्धु की ओर।
नगर, ग्राम, पुर, डगर डुबाती इसका ओर न छोर।
किसने ऐसा दूध पिया जो रोके गति तूफानी ?
यह जीवन का ज्वार चली उफनाती प्रखर जवानी।
युवक हार जाते हैं लेकिन यौवन कभी न हारा।
एक निमिष की बात नहीं है चिर–संघर्ष हमारा।
पृथ्वीराज की आँखें जातीं स्वप्न न उनके जाते।
भर जाते हैं घाव, दाग पर सदा अमिट रह जाते।
यह जन–गंगा जन–जीवन का कल्मष कलुष बहाती।
जो डूबा सो पार हो गया मुक्ति लुटाती जाती।
मृत में जीवन और जीवितों में ज्वाला सुलगाती।
भ्रष्ट भग्न माँ के मन्दिर को पुनः पवित्र बनाती।
इसके सम्मुख सम्राटों के मस्तक नत होने को।
इसके तट पर राज्य बिगड़ने को, बनने को।
पुण्य पूर्वजों के पौरुष का यह प्रतिफल है।
सृष्टि–काल का स्नेह, प्रलय का आकुल जल है।
कोटि बिन्दु बह रहे सिन्धु का अगम रूप धर।
कोटि चरण बढ़ रहे ध्येय की ओर निरन्तर।

(२)

यह परम्परा का प्रवाह है, कभी न खण्डित होगा।
पुत्रों के बल पर ही माँ का मस्तक मण्डित होगा।
वह कपूत है जिसके रहते माँ की दीन दशा हो।
शत भाई का घर उजाड़ता, जिसका महल बसा हो।
घर का दीपक व्यर्थ, मातृ–मन्दिर में जब अँधियारा।
कैसा हास–विलास कि जब तक बना हुआ बँटवारा ?
किस बेटे ने माँ के टुकड़े करके दीप जलाये ?
किसने भाई की समाधि पर ऊँचे महल बनाये ?
चिता–भस्म पर किसने सुख के स्वर्णिम साज सजाये ?
किसने लाखों के विनाश पर जय के वाद्य बजाये ?
किस कपूत ने पूत पंचनद को कर डाला लाल ?
किसके पापों का प्रतिफल है भोग रहा बंगाल ?
किसने आग लगाकर अपने घर में किया उजाला ?
किसने निज का सुख खरीद, माँ का विक्रय कर डाला ?
शस्य–श्यामला स्वर्ण भूमि क्यों हुई आज कंगाल ?
किसके कारण वेदभूमि में आज अभाव, अकाल ?
जग–जननी ने भीख माँगने का दुर्दिन क्यों देखा ?
पुत्रों के पापों का फल है, यह न नियति का लेखा।
सूर्य गिर गया अन्धकार में ठोकर खा कर।
भीख माँगता है कुबेर झोली फैलाकर।
कण–कण को मोहताज, कर्ण का देश हो गया।
माँ का आँचल द्रुपद–सुता का केश हो गया।
जब तक अधरों में न भीम की शोणित प्यास जगेगी।
तब तक उर से अपमानों की ज्वाला नहीं बुझेगी।
कोटि दीप जल रहे तमिस्रा चीर–चीर कर।
कोटि चरण बढ़ रहे ध्येय की ओर निरन्तर।

(३)

आँसू नहीं, स्वेद शोणित की आज माँग है।
कण्ठ–कण्ठ में मर–मिटने का अमिट राग है।
प्राण–पुष्प ही नहीं, करो जीवन का अर्पण।
अब न सहेंगे जननी के केशों का कर्षण।
कंटक–पथ पर पाँव बढ़ाते गाते जाना।
हर बाजी पर हमें यहाँ सर्वस्व लगाना।
जन्म–मरण का खेल अनूठा, इसमें हार नहीं है।
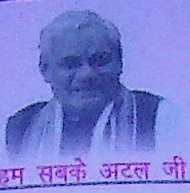
वह क्या चल पायेगा जिसको पथ से प्यार नहीं है।
सन पचीस का वर्ष ! पन्थ पर राही एक चला था।
अन्धकार का वक्ष चीरकर दीपक एक जला था।
दैन्य–दास्य का पंक दबाकर शत–दल कमल खिला था।
काल रात्रि को भेद ज्योति का प्रखर पुञ्ज निकला था।
पथ पर चलते–चलते ही वह राह बन गया।
तिल–तिल कर जलते जलते ही दाह बन गया।
वह कैसा था भक्त, स्वयं भगवान बन गया।
कुम्भकार की कृति होकर, निर्माण बन गया।
आज नहीं वह, किन्तु पथ पर चरण–चिह्न अंकित हैं।
मनु के वंशज प्रलय काल से क्यों शंकित हैं ?
रामकृष्ण यदि गये विवेकानन्द शेष हैं।
अभी मूर्ति की पूर्ति शेष है, प्रण अशेष है।

आओ युग के सपनों को साकार करें हम।
मृतकों में भी जीवन की हुँकार भरें हम।
सबल भुजाओं में रक्षित है नौका की पतवार।
चीर चलें सागर की छाती, पार करें मँझधार।
ज्ञान–केतु लेकर निकला है विजयी शंकर।
अब न चलेगा ढोंग, दम्भ, मिथ्या आडम्बर।
अब न चलेगा राष्ट्र प्रेम का गर्हित सौदा।
यह अभिनव चाणक्य न फलने देगा विष का पौधा।
तन की शक्ति, हृदय की श्रद्धा, आत्म–तेज की धारा।
आज जगेगा जग–जननी का सोया भाग्य सितारा।
कोटि पुष्प चढ़ रहे देव के शुभ चरणों पर।
कोटि चरण बढ़ रहे ध्येय की ओर निरन्तर।

□

हिन्दीदाँ हुलसे फिरैं, मार लिया ज्यों तीर।
मारीशस की भीड़ पर, छिड़का गंगा नीर।।
छिड़का गंगा नीर, साथ में अक्षत रोली।
चन्दन घिसती रही मुफ्त का, पण्डा टोली।
कह कैदी कविराय विश्व भाषा का सपना।
पूरा होगा सिर्फ मन्त्र हिन्दी का जपना।।

गूँजी हिन्दी विश्व में, स्वप्न हुआ साकार।
राष्ट्रसंघ के मंच से, हिन्दी का जयकार।।
हिन्दी का जयकार, हिन्द हिन्दी में बोला।
देख स्वभाषा प्रेम विश्व अचरज से डोला।।
कह कैदी कविराय मेम की माया टूटी।
भारत माता धन्य, स्नेह की सरिता फूटी।।

(इस बार भोपाल में आगामी सितम्बर मास में विश्व हिन्दी सम्मेलन का अधिवेशन होने जा रहा है। मारीशस में सम्पन्न हुए विश्व हिन्दी सम्मेलन का स्मरण प्रथम छप्पय में है।

द्वितीय छप्पय में संयुक्त राष्ट्र संघ के मञ्च से हिन्दी में प्रथम बार हुए श्री हाशमी के भाषण की ओर ध्यान आकृष्ट कर हिन्दी गौरव का उल्लास है। – सम्पादक)

– डॉ. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा

अटल जी : सम्पादक, लेखक और राजनेता के रूप में

(डॉ. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा अब नहीं रहे। उनकी अटल जी की रचनाओं के संकलन व प्रकाशन में बड़ी भूमिका रही, अन्यथा पूरा अटल वाङ्मय शायद आज हमें उपलब्ध न होता। उनका यह साक्षात्कार अटल जी के जीवन के विभिन्न आयामों को उद्घाटित करने में समर्थ है।– सम्पादक)

१९६४ के अन्तिम महीने की पहली तारीख। लखनऊ के राजकीय अतिथिगृह का कमरा नं. एक। श्री अटल बिहारी वाजपेयी तथा तीन–चार लोग बैठे बातचीत कर रहे हैं, सभी के हाथ में लखनऊ के चौक की मक्खन मलाई की प्लेट। अटल जी धीरे–धीरे चम्मच से थोड़ी–थोड़ी मक्खन मलाई स्वाद ले–लेकर खा रहे हैं। मैं भी इस कार्यक्रम में सम्मिलित हो जाता हूँ। अटल जी से उनके सम्पादक–रूप का साक्षात्कार लेने का मन्तव्य व्यक्त करता हूँ। एक क्षण के लिए नेत्र बन्द कर वे कुछ सोचते हैं और कहते हैं– "आधी शती पीछे लौटना होगा।"

बात प्रारम्भ होती है। अटल जी बताते हैं– छात्र जीवन से ही मेरी इच्छा सम्पादक बनने की थी। लिखने–पढ़ने का शौक और छपा हुआ नाम देखने का भी मोह। इसलिए जब एम.ए. की पढ़ाई पूरी की और कानून की पढ़ाई अधूरी छोड़ने के पश्चात् सरकारी नौकरी न करने का पक्का इरादा बना लिया और साथ ही अपना पूरा समय समाज की सेवा में लगाने का मन भी, उस समय मैंने पूज्य भाऊराव देवरस के इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया कि संघ द्वारा शीघ्र प्रकाशित होनेवाले 'राष्ट्रधर्म' के सम्पादन में मैं हाथ बटाऊँ। (स्व.) श्री राजीवलोचन अग्निहोत्री भी मेरे साथ लगाये गये। हम दोनों सम्पादक बने।

लखनऊ के पुराने स्वयंसेवक श्री राधेश्याम कपूर 'राष्ट्रधर्म' के प्रकाशक बनाये गये थे। पत्र मुद्रण के लिए अवध प्रिंण्टिग प्रेस चुना गया। 'राष्ट्रधर्म' के प्रथम अंक का प्रकाशन श्रावणी पूर्णिमा सं. २००४ वि. में प्रारम्भ हुआ। मेरे न चाहने पर भी माननीय देवरस जी के आदेश से मुझे पहले पृष्ठ पर अपनी कविता– 'हिन्दू तन मन, हिन्दू जीवन' देनी पड़ी। मैं इस कविता को बीच के किसी पन्ने पर देना चाहता था; किन्तु देवरस जी का प्रेमादेश मानना पड़ा। श्री शान्तिदेव, जो अपने स्वयंसेवक तथा आर्ट कॉलेज के विद्यार्थी थे, उन्होंने कविता के भावों पर आधारित परिकल्पना बनायी। यह परिकल्पना बहुत आकर्षक, भावपूर्ण और गरिमायुक्त थी।

'राष्ट्रधर्म' का प्रथम अंक तीन हजार प्रतियों का छपा। उन दिनों मासिक पत्रों की इतनी अधिक प्रतियाँ विरले पत्र ही छापते थे। तीन हजार प्रतियाँ हाथोहाथ बिक गयीं। हमें ५०० प्रतियाँ और छपवानी पड़ीं। 'राष्ट्रधर्म' की लोकप्रियता से मेरा मन उत्साह से भर गया।

'राष्ट्रधर्म' के प्रथम अंक में जहाँ

तक स्मरण है, पूज्य गुरुजी का लेख 'हमारा राष्ट्रवाद' छपा था। इस अंक में आद्य शंकराचार्य का चित्र भी दिया गया था। मैंने दूसरे अंक को और अधिक आकर्षक और स्तरीय बनाने का संकल्प किया और यह अंक ६ हजार छापा गया। 'राष्ट्रधर्म' की लोकप्रियता ऐसी बढ़ी कि अगला अंक ८ हजार छपा; क्योंकि अब हाथ से चलानेवाला अपना प्रेस सदर के पोलोग्राउण्ड के सामने की सड़क पर लग गया था।

'राष्ट्रधर्म' के अतिरिक्त मैंने काशी में 'साप्ताहिक साधना' का भी सम्पादन किया। लखनऊ से प्रकाशित होनेवाले 'पाञ्चजन्य' और दैनिक 'स्वदेश' का सम्पादन भी मैंने किया। दिल्ली से प्रकाशित होनेवाले दैनिक 'वीर अर्जुन' और साप्ताहिक 'वीर–अर्जुन' का सम्पादक भी मैं रहा। इन सभी पत्रों में मैंने जी–जान से जुटकर सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयास किया। वर्तनी की भूलें न जायें, इसके लिए मैं बहुत सजग रहता था; क्योंकि वर्तनी की भूल पाठक के पढ़ने का मजा वैसा ही किरकिरा कर देती है, जैसे दाल में कंकड़।

इसी बीच में अटल जी से यह पूछ बैठता हूँ कि **आप अपने सम्पादक के रूप में हुए अनुभवों को बताने की कृपा करें।**

वे कुछ क्षण विचारमग्न हो जाते हैं और कहते हैं– 'उन दिनों सम्पादक का कार्य बड़े दायित्व का समझा जाता था। उसके साथ प्रतिष्ठा भी जुड़ी होती थी। वेतन तथा अन्य सुविधाओं पर इतना ध्यान नहीं दिया जाता था। हम तो अवैतनिक सम्पादक ही रहे। केवल जरूरी खर्च भर के लिए पैसे लेते थे। सुविधाएँ नाममात्र की; किन्तु

दैनिक–पत्र के सम्पादन का आनन्द तो और ही है। उसका अपना अलग ही आनन्द होता है। मुझे याद है, शाम से जो कार्य आरम्भ होता था, वह सारी रात चलता रहता था। इस होड़ में बड़ा मजा आता था कि कौन कितनी देर तक समाचारों को खोजता है और उनके प्रकाशन में आगे रहता है।

विचारधारा के प्रचार का एक अद्भुत सन्तोष था।

दैनिक–पत्र के सम्पादन का आनन्द तो और ही है। उसका अपना अलग ही आनन्द होता है। मुझे याद है, शाम से जो कार्य आरम्भ होता था, वह सारी रात चलता रहता था। इस होड़ में बड़ा मजा आता था कि कौन कितनी देर तक समाचारों को खोजता है और उनके प्रकाशन में आगे रहता है। प्रायः प्रतिदिन भोर में जब चिड़ियाँ चहचहाने लगती थीं, तो थकान से चूर होकर खाट पर लेटते थे और ऐसी गहरी नींद आती थी कि उसका स्मरण कर इस समय भी मन पुलकित हो जाता है।

उन दिनों जो सम्पादक व्यावसायिक पत्रों में काम करते थे, वे स्तर और मर्यादा का ध्यान रखते थे; मालिक लोग भी उनकी स्वतन्त्रता का सम्मान करते थे। अब तो सब कुछ बदल गया है। सम्पादक को हटाकर मालिक स्वयं प्रबन्ध सम्पादक बनकर पत्र का सम्पादन कर रहे हैं।

पत्रकारिता पहले कभी मिशन थी, फिर प्रोफेशन हुई और अब 'धन्धा' बनती जा रही है। आगे के बदलते वक्त में वह क्या रूप लेगी, कहना कठिन है। अब प्रतिभा–सम्पन्न, विद्वान् और बहुज्ञ व्यक्तियों का अभाव, इस क्षेत्र में खटकने वाली बात है।"

सम्पादक के रूप में सम्पादकीय के अतिरिक्त क्या आप लेखादि भी लिखते थे ?

"जी हाँ, साहित्यिक, सांस्कृतिक आदि विषयों पर लेख भी लिखता था। महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर रिपोर्ट मैं स्वयं तैयार करता था। घटनास्थल पर पहुँचकर पूरा जायता लेता था, सभी तथ्य इकट्ठा करता था और तब लिखता था।"

अटल जी ! क्या आप छद्म नाम से भी कुछ लिखते थे ?

"मुझे याद नहीं", इतना कहकर अतीत की कुछ स्मृतियों को बताते हुए वे कहते हैं– वे भी क्या दिन थे। केवल अपने 'राष्ट्रधर्म', 'पाञ्चजन्य' या 'स्वदेश' ही सदैव आँखों के सामने नाचा करते थे। कितनी उत्तम, उत्कृष्ट और सुरुचिपूर्ण सामग्री पत्र में दी जाये, इसी सोच में मन लीन रहता था। प्रत्येक ताजा आनेवाला अंक अपने पूर्व के अंक से बाजी मारने के लिए होड़ करता था। उसी को सँवारने में

— 'श्री वाजपेयी एक कुशल सांसद हैं।'

— डॉ. राधाकृष्णन, पूर्व राष्ट्रपति

सदैव जुटा रहता था। कब भोर हुई, कब शाम हुई-- इसका पता नहीं चलता था। खाया कि नहीं खाया, इसकी याद ही नहीं रहती थी। पाठकों के आये हुए प्रशंसात्मक पत्र पढ़कर भूख–प्यास मिट जाती थी। पत्र के लिए सामग्री जुटाना, प्रूफ पढ़ना, प्रारूप बनवाना, कार्टून तैयार करवाना और बण्डल बाँधना आदि सब कुछ करता था। इन सभी कार्यों में जो आनन्द प्राप्त होता था, वह शब्दों में नहीं व्यक्त कर सकता।

इसी बीच मैं एक और प्रश्न जड़ देता हूँ। **अटल जी ! जिन दिनों संघ पर प्रतिबन्ध लग गया था, उन दिनों फरारी में आप किस प्रकार सम्पादन करते थे ?**

"अरे भाई ! उन दिनों हमारे समाचारपत्र आदि पर तो शासन की नजर बड़ी टेढ़ी हो गयी थी। इन पत्रों के कार्यालयों पर ताले जड़ दिये गये थे। पुलिस का पहरा हो गया था। मुझे इलाहाबाद भेज दिया गया। 'चाँद' का जो 'फाँसी अंक' प्रकाशित हुआ, उसमें तथा 'क्राइसिस' में मैंने कार्य आरम्भ कर दिया। इन दोनों पत्रों में मैं लिखता था। बाद में काशी चला गया। वहाँ किसी ने 'चेतना' के विरुद्ध बड़ी तीखी टिप्पणी की थी। मैंने उसका और तीखा उत्तर दिया। मैंने उस समय जो कुछ लिखा था, उसका भाव इस प्रकार था– संसार सुन ले कि 'चेतना' अपने निर्धारित पथ से नहीं डिगेगी। 'चेतना' का पाठकों में, विशेषकर बुद्धिजीवियों में बहुत आदर हुआ था। उसने लोगों में राष्ट्रप्रेम की लहर दौड़ा दी थी।"

पत्रों के सम्पादन के बाद जब आप राजनीति में आ गये, तो किस प्रकार के लेखन में आपका मन रहता रहा ?

"राजनीति में तो लेखन की अपेक्षा भाषण का अधिक महत्त्व रहता है। भाषणों के दबदबे ने लेखन को गौण बना दिया है; किन्तु मैंने लेखन छोड़ा नहीं। कुछ–न–कुछ सदैव लिखता ही रहा और आज भी खाली समय में या तो कोई पुस्तक उठा लेता हूँ या कागज के पत्रों पर लेखनी को दौड़ाने लगता हूँ।

सम्पादक के जीवन के बाद मैंने मुख्य रूप से राजनीति और संस्कृति सम्बन्धी लेख लिखे थे, जो पत्र–पत्रिकाओं में छपते रहे। वैसे कविता ने मेरा साथ कभी नहीं छोड़ा और छोड़ती भी कैसे, वह तो मुझे विरासत में अपने परिवार से मिली थी। आज भी यदा–कदा मेरा साहित्यकार मन कविता लिखवा देता है।"

अटल जी ! आपकी लेखकीय प्रतिभा को आपकी भाषणकला ने शनै शनैः अपने कब्जे में कर लिया। क्या आप मेरे कथन से सहमत हैं ?

"इसके विषय में मैं क्या कहूँ ? ज्यों–ज्यों भाषण बढ़ते गये, त्यों–त्यों लेखन कम होता गया। हाँ, यदि उसी समय उन भाषणों को लिपिबद्ध कर लिया गया होता, तो वे साहित्य के अच्छे नमूने होते। तब तो टेपरिकार्डर का प्रचलन भी नहीं था। मेरे भाषणों में मेरा लेखक ही बोलता है, पर ऐसा नहीं है कि राजनेता मौन रहता है। राजनेता अपने विचार लेखक के समक्ष परोसता है और लेखक पुनः विचारों को, अभ्यास के कारण पैनी अभिव्यक्ति देने का प्रयास करता है। मैं तो मानता हूँ कि मेरे लेखक और राजनेता का परस्पर समन्वय ही मेरे भाषणों में उतरता है। यह जरूर है कि राजनेता ने लेखक से बहुत कुछ पाया है। मेरा लेखक मेरे राजनेता को वाक्संयम की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करने देता। उसकी चौकस वर्जना के कारण ही राजनेता सदैव भाषा संयम का ध्यान रखता है। राजनेता अपने भाषण में लेखकीय अनुशासन में बँधकर चलता है।"

आज के सम्पादकों को आप क्या सन्देश देना चाहेंगे ?

"मैं कोई उपदेश देने की स्थिति में नहीं हूँ। जब पूछ ही रहे हो, तो इतना कहना चाहूँगा कि सम्पादक को समाज के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए और अपने प्रति सच्चा होना चाहिए। आत्मा के विरुद्ध काम नहीं करना चाहिए, लेकिन यह जरूरी है कि आत्मा को पहले जीवित रखा जाये।"

"मुझे सम्पादकाचार्य पं. बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित एक घटना का स्मरण हो रहा है। उन दिनों वे 'विशाल भारत' के सम्पादक थे। 'मॉडर्न रिव्यू' और 'विशाल भारत' के सर्वेसर्वा रामानन्द चटर्जी महाशय थे। चटर्जी महाशय 'हिन्दू महासभा' के अध्यक्ष चुने गये। पं. बनारसीदास जी को यह पसन्द नहीं आया। उन्होंने 'विशाल भारत' में निर्भीकतापूर्वक अपने विचार प्रकट कर दिये। परिणाम की चिन्ता नहीं की। जब रामानन्द चटर्जी ने यह पढ़ा, तो पण्डित जी को बुलवाया और कहा कि मैं उसका सम्मान करता हूँ, जो कुछ आपने लिखा है। उन्होंने यह भी बताया कि किन परिस्थितियों में उन्होंने हिन्दू महासभा का नेतृत्व स्वीकार किया है। उन्होंने कहा कि आप 'विशाल भारत' में मेरा स्पष्टीकरण भी छापें। पण्डित जी ने सहर्ष स्पष्टीकरण छापा। अब न तो रामानन्द चटर्जी जैसे प्रकाशक हैं और न पं. बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे सम्पादक।" □

– 'भाषा–सौन्दर्य, प्रभावशाली वक्तृत्व और संसदीय व्यक्तित्व की शक्ति के द्वारा श्री वाजपेयी हमारे संसदीय जीवन को समृद्ध कर रहे हैं। अपने कुशल नेतृत्व के कारण वे प्रथम पंक्ति के नेता माने जाते हैं।'

– प्रोफेसर रंगा
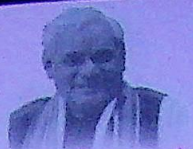
सोने का चावल और अटल जी

घटना सन् १९६४ की है। मेरे पूज्य पिता पं. रामनरेश मिश्र (अब दिवंगत) से अटल जी ने कहा कि रामनरेश जी ! गाड़ी स्टार्ट करिये, अपने राम लखपति जी के घर चलना है। राम लखपति जी आर्थिक दृष्टि से अति सामान्य; किन्तु भारतीय जनसंघ के ध्येयनिष्ठ कार्यकर्त्ता थे।

बलरामपुर क्षेत्र में हरैया के निकट तराई आँचल में छोटे से गाँव लंकापुर के निवासी थे; किन्तु पढ़े–लिखे नहीं थे। अटल जी को अपने घर भोजन कराने के लिए वे कई बार आग्रह कर चुके थे।

श्री रामनरेश मिश्र द्वितीय विश्वयुद्ध में सेना से अवकाश प्राप्त कर अपने पैतृक गाँव लालपुर फगुइया में रहने लगे थे।

सन् १९६२ के लोकसभा चुनाव के दौरान अटल जी के ड्राइवर के अचानक बीमार पड़ जाने के कारण कार्यकर्त्ताओं ने गाँव पहुँचकर सम्पर्क किया और अटल जी से जनसंघ कार्यालय (सराय फाटक) पर भेंट करवायी। अटल जी ने कहा, गाड़ी चलाना ठीक प्रकार से आता हैं ? उन्होंने कहा कि गाड़ी और गोली दोनों चलाना अच्छी प्रकार से आता है। मैं सैनिक हूँ। अटल जी ने कहा कि मुझे एवं भारतीय जनसंघ को ऐसे ही सारथी की आवश्यकता है, जो सर्व गुण–सम्पन्न हो। आज से आप मेरे सारथी हुए।

अटल जी के सम्पर्क से गाड़ी चलाने से लेकर संगठन के कामों तक में एक ध्येयनिष्ठ कार्यकर्त्ता के रूप में ये जीवन पर्यन्त जुड़े रहे।

राम लखपति जी के दरवाजे पर गाड़ी से उतरते हुए अटल जी ने कहा, राम लखपति जी ! आज मैं रामनरेश जी के साथ आपके यहाँ भोजन करने आया हूँ; लेकिन भोजन के पूर्व मेरी शर्त है कि मैं आज सोने का चावल खाऊँगा।

अटल जी अपने कार्यकर्त्ताओं की पारिवारिक स्थिति से भलीभाँति अवगत थे। मक्का यहाँ की मुख्य फसल है, यह जानकारी होने के कारण ही अटल जी ने मक्के के चावल खाने की शर्त रखी, जिससे अपने कार्यकर्त्ता को भोजन कराने में परेशानी न हो।

राम लखपति जी ने कहा कि अटल जी, हम लोग मेहमानों के लिए अथवा त्योहार के निमित्त धान का चावल घर में रखते हैं।

लेकिन अटल जी ने विशेष आग्रह कर मक्के का चावल बनवाकर फूस–छप्पर के बने साधारण घर में चौके में पीढ़े पर बैठकर भोजन किया।

राम लखपति जी का परिवार पुरानी परम्पराओं का पालन करनेवाला साधारण गरीब ब्राह्मण परिवार था। भोजन के पूर्व सभी सदस्य वस्त्र उतारकर भोजन करते थे।

राम लखपति जी की माता जी ने अपने ही पुत्र की भाँति अटल जी को भी कपड़े उतारने का आदेश दिया। अटल जी ने परिवार की मान्यता का अक्षरशः पालन करते हुए वस्त्र उतार कर चौके में बैठकर बड़े ही चाव के साथ मक्के के चावल से बना भोजन किया। सभी लोग भाव विभोर थे।

ऐसा रहा है पूर्व प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी का लोक–संग्रही व्यक्तित्व, जिससे आज भी साधारण कार्यकर्त्ताओं को प्रेरणा मिलती है। □

– ओमप्रकाश मिश्र, बलरामपुर

> 'श्री अटल जी विचारशील राजनीतिज्ञ और प्रतिभाशाली संसद–सदस्य हैं।'
>
> – बाबू जगजीवनराम

– लालजी टण्डन
(पूर्व मन्त्री, उ.प्र., पूर्व सदस्य लोकसभा)

ऐसे रहे हैं अपने अटल जी !

अटल जी नेता प्रतिपक्ष हो गये थे। लखनऊ में ३ दिन का प्रवास रखा गया। जिस दिन उन्हें वापस दिल्ली जाना था, उसी सुबह जब मैं गेस्ट हाउस पहुँचा, तो देखा, अटल जी व्यथित हैं। मुझे देखते ही बोले, अरे ! कल्लू नहीं रहा, उसके घर चलना है। ये वही कल्लू था, जो प्रारम्भिक दिनों में अटल जी के साथ प्रेस में मशीन पर काम करता था। उससे मिले मुझको भी वर्षों हो गये थे और अटल जी से तो और भी ज्यादा दिन; लेकिन जैसे ही उसके बारे में पता चला, वे किसी भी स्थिति में उसके घर जाने को तैयार थे और गये भी।

x x x

एक और अवसर। अटल जी प्रधानमन्त्री बन चुके थे और उनकी व्यस्तता भी बढ़ गयी थी; लेकिन लखनऊ लगातार आना उनकी शैली में था। लखनऊ आना, विविध कार्यक्रमों में जाना, कार्यकर्त्ताओं से बातचीत निर्बाध जारी थी। एक बार लखनऊ के कार्यकर्त्ताओं ने कहा कि आप हमेशा दिल्ली में हम लोगों से मिलते रहे, खिलाते–पिलाते रहे; लेकिन अब बन्द कर दिया। क्या कारण है ? अटल जी तुरन्त राजी हो गये कि ठीक है, तुम सब आओ, खूब खिलाऊँगा और लखनऊ से शंकर जी की बारात की तरह चल दिये कार्यकर्त्ता दिल्ली प्रधानमन्त्री आवास की ओर। जिसको जैसे मौका मिला, कोई बस, कोई ट्रेन, तो बहुत सारे सड़क मार्ग से ही प्रधानमनत्री आवास पहुँचे। भव्य–व्यवस्था थी, सारा प्रधानमन्त्री कार्यालय स्वागत में था। लखनऊ के कार्यकर्त्ताओं के मेजबान थे खुद अटल जी। आवास के सबसे बड़े बागीचे में कुर्सियाँ लगी थीं। सारे कार्यकर्त्ताओं से उन्होंने बातचीत की। दोपहर को भोजन की व्यवस्था थी और लोग थे कि आते ही जा रहे थे। अटल जी का जोरदार भाषण हुआ। वे भावनाओं के सागर में बहने लगे, कार्यकर्त्ता भी पूरे मनोभाव से उनमें रमे थे। किसी ने ध्यान दिलाया कि खाना ठण्डा हो रहा है, अब बस भी कीजिये। ठहाका लगा कर अटल जी ने कहा, 'अब पेट पूजा फिर काम दूजा।'

भोजन को देर हो चुकी थी, सामने लॉन में चारों ओर से पकवानों की खुशबू आ रही थी, आव न देखा ताव, सारे कार्यकर्त्ता जुट गये भोजन पर। व्यवस्था भव्य थी विविध व्यञ्जन थे। हों भी क्यों न, देश का प्रधानमन्त्री अपने प्रिय कार्यकर्त्ताओं को अपने यहाँ बुलाकर खिला जो रहा था। इसमें एक मजेदार वाकया हुआ, सब कुछ चखने के चक्कर में कुछएक कार्यकर्त्ता मछली भी पनीर टिक्का समझकर खा बैठे। जब पता चला, तो अटल जी भी ठहाका लगाने लगे।

x x x

अपने कष्ट की परवाह किये विना जनता के लिए उपलब्ध रहना अटल जी के व्यक्तित्व का एक और पहलू है। सारे राजनैतिक कार्यों, प्रशासनिक जिम्मेदारियों के निर्वहन के साथ ही अपने संसदीय क्षेत्र में उनकी उपलब्धता अद्भुत थी और कार्यक्रम देने के बाद किसी भी स्थिति में उसमें पहुँचना उनका वैशिष्ट्य। एक बार लखनऊ में उन्होंने एक दिन में कई कार्यक्रम स्वीकृत कर दिये; लेकिन कार्यक्रम से एक दिन पूर्व पता चला कि वे भीषण ज्वर से पीड़ित हैं। मैंने उन्हें फोन कर आग्रह किया कि स्वास्थ्य ठीक नहीं है, तो कार्यक्रम फिर रख लिये जायेंगे। मेरे आग्रह पर उत्तेजित हो गये। कहा, मैं जरूर आऊँगा। बड़ा मार्मिक अनुभव था, गला भर्राया हुआ, बुखार से शरीर तप रहा, आँखें बन्द हो जातीं; मगर सभी जगह पहुँचे। मैं उनके साथ रास्ते भर चाय अथवा सूप जो मैं विना बताये गाड़ी में ले गया, जो उन्हें स्वयं डॉट खाता और कुछ गर्म पिलाता रहा। किसी प्रकार चौक में एक कार्यकर्त्ता के यहाँ रोक कर गर्म पानी की सिंकाई की, कुछ खाया; बोले, मैं न जाता, तो जो लोग इन्तजार कर रहे थे, वे क्या धारणा बनाते ? □

– सोढी टोला, लखनऊ (उ.प्र.)

– श्री वाजपेयी हमारे प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेताओं में से हैं। उनके विचार स्पष्ट हैं और वे उसको शानदार ढंग से प्रकट करते हैं।

– सरदार गुरदयाल सिंह ढिल्लो, तत्कालीन अध्यक्ष, लोकसभा

— हरिकृष्ण निगम

अपहृत अवयस्क कश्मीरी बालिका परमेश्वरी हाण्डू के मुस्लिम युवक से बलात विवाह का १९६७ का विस्फोटक विवरण

जब जनसंघ के बलराज मधोक व अटल बिहारी वाजपेयी के हस्तक्षेप से गुलाम मोहम्मद सादिक से लेकर कांग्रेसी गृहमन्त्री तक बौखला उठे थे

जहाँ तक कांग्रेस का प्रश्न है, वह पण्डितों की 'संकुचित व साम्प्रदायिक दृष्टि' को उलटा दोष दे रही थी, जबकि पण्डित समूह इसे अपने आत्मसम्मान व प्रतिष्ठा का प्रश्न बना चुका था। इस प्रसंग में शादी का मुद्दा इसलिए भी हिन्दू समाज को आहत करनेवाला था; क्योंकि परमेश्वरी नाबालिग थी। इसलिए आन्दोलनकारियों की पहली माँग थी कि उसे उसकी माँ के या न्यायालय द्वारा किसी अधिकृत संगठन को सौंपा जाये।

साठ के दशक के उत्तरार्द्ध में यदि किसी एक राजनीतिक घटना को देश के गैर–कांग्रेसी राजनीति का पहला स्पष्ट संकेत देनेवाला प्रारम्भिक रुझान् कहा जाये, तो वह परमेश्वरी हाण्डू नामक एक अवयस्क कश्मीरी बालिका के मुस्लिम युवक से विवाह का प्रकरण था, जिसने सारे देश में उथल–पुथल मचा दी थी। एक प्रतिष्ठित विधवा हिन्दू पण्डित महिला की अवयस्क लड़की के एक मुस्लिम युवक से बलात् विवाह किये जाने पर जब पण्डित समुदाय ने वहाँ के उस समय के मुख्यमन्त्री गुलाम मोहम्मद सादिक और दिल्ली के कांग्रेसी नेताओं को खुली चुनौती देकर जिस प्रकार जनसंघ के नेता बलराज मधोक व अटल बिहारी वाजपेयी के खुले हस्तक्षेप द्वारा उस समय पण्डितों के आन्दोलन का नेतृत्व किया गया था वह दूरगामी नीति का परिचायक था जिसके द्वारा कश्मीरी घाटी के जनसांख्यिकी परिवर्त्तन को भी चुनौती दी गयी थी।

उस समय गुलाम मोहम्मद सादिक कश्मीर के मुख्यमन्त्री थे, जो बाद में केन्द्र की कांग्रेसी सरकार के हाथों की कठपुतली सिद्ध हुए थे और गृहमन्त्री यशवन्त राव बलवन्त राव चव्हाण थे। पण्डितों के उस समय चले व्यापक आन्दोलन में जनसंघ के युवा नेता बलराज मधोक की भूमिका कांग्रेस के केन्द्रीय नेतृत्व को हिला देने में सक्षम थी। जब श्रीनगर में लगभग एक महीने तक पण्डितों का आन्दोलन भड़क चुका था, तब श्री चव्हाण वहाँ स्वयं आये और पण्डितों के नेताओं से शान्ति की अपील करने पर सादिक सरकार से कुछ आश्वासन लिखित रूप से लेने में सफल हुए थे। उस समय कश्मीर घाटी में हिन्दू या सिख लड़कियों से मुस्लिम युवाओं के दबाव में आकर विवाह करने के कई उदाहरण सामाजिक तनाव फैलाते रहते थे। जहाँ तक कांग्रेस का प्रश्न है, वह पण्डितों की 'संकुचित व साम्प्रदायिक दृष्टि' को उलटा दोष दे रही थी, जबकि पण्डित समूह इसे अपने आत्मसम्मान व प्रतिष्ठा का प्रश्न बना चुका था। इस प्रसंग में शादी का मुद्दा इसलिए भी हिन्दू समाज को आहत करनेवाला था; क्योंकि परमेश्वरी नाबालिग थी। इसलिए आन्दोलनकारियों की पहली माँग थी कि उसे उसकी माँ के या न्यायालय द्वारा किसी अधिकृत संगठन को सौंपा जाये।

अगस्त, २२, १९६७ तक जब आन्दोलनों के बाद भी कुछ परिणाम न निकला, तब जनसंघ के नेता बलराज मधोक ने एक घोषणा द्वारा वक्तव्य जारी किया कि "देश के ४० करोड़ हिन्दू इस आन्दोलन को असफल न होने देंगे" और पण्डितों की अस्मिता की रक्षा के लिए वे कटिबद्ध हैं। वे

— श्री वाजपेयी का भाषण सुनते समय मैं अपने को भूल जाता हूँ।

— डॉ. जाकिर हुसैन, पूर्व राष्ट्रपति

कांग्रेसी, जो मुसलमानों का पक्ष ले रहे थे, घाटी के बाहर यह दुष्प्रचारित करने लगे कि "हिन्दू धार्मिक उन्मादी" बाहरी हस्तक्षेप बन्द कर दें। अंग्रेजी पत्रिकाएँ जैसे दिल्ली से प्रकाशित 'लिंक' में यह भी आरोप लगाये गये कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने श्रीनगर में एक गुप्त संगठन स्थापित कर वहाँ अपने पैर जमाने की कोशिश की है। लगभग उसी समय जनसंघ की वर्किंग कमेटी की एक मीटिंग सितम्बर, १९६७ के तीसरे सप्ताह में बड़ौदा में हो रही थी, जिसमें अटल बिहारी बाजपेयी व बलराज मधोक भी आनेवाले थे। वहाँ इस सुलगते प्रकरण पर चर्चा होनी ही थी, इसलिए दिल्ली में कांग्रेसी नेतृत्व भी घबड़ाया हुआ था।

जब उस समय आन्दोलनकारी युवराज कर्णसिंह से मिले, तो उन्होंने इसमें साम्प्रदायिक तत्त्वों का राजनीतिक एजेण्डा देखा; क्योंकि उनका कोई भी हस्तक्षेप दिल्ली के मत में कश्मीर घाटी में नयी अशान्ति फैला सकता था। वे भी कश्मीर की स्थिति पर केन्द्र की तरह ढुलमुल व संशयपूर्ण थे। उस समय एक दुष्प्रचार अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर यह भी था कि कहीं कश्मीर भारत से अलग न हो जाये, यदि वहाँ की शान्ति भंग होती रहेगी। कांग्रेस से जुड़े अनेक कश्मीरी पण्डित भी यह दोहराने लगे थे। जम्मू के हिन्दुओं व लद्दाखी बौद्धों में भी उस समय डा. कर्णसिंह का कश्मीर को विभाजित करने का फार्मूला अमेरिका में पाकिस्तान लॉबी द्वारा जन्मा माना जा रहा था। एक बार कश्मीर यदि एक 'सुपर-स्टेट' बन जाता है, इसकी स्वायत्तता के लिए वार्त्ता सहज हो सकती थी। उस समय दिल्ली में शेख अब्दुल्ला के साथ चल रही अलग वार्त्ता ने इस भय को अधिक तीव्र गति दे दी थी। जनसंघ द्वारा पण्डितों के जिस सम्मेलन की श्रीनगर में घोषणा हुई थी, उससे भी दिल्ली में प्रतिक्रिया की सम्भावना पर विचार होने लगा था कि मुस्लिम उन्हें घाटी से निकालने की पहल न कर दें।

उस समय केन्द्रीय गृहमन्त्री श्री चव्हाण दिल्ली से घाटी के बहुसंख्यक मुस्लिम सम्प्रदाय के सकारात्मक रवैये की प्रशंसा में जुटे थे। उलटे उस समय राँची के भड़के दंगों के लिए हिन्दू कट्टरपन्थियों को कश्मीरी पण्डितों के प्रति सहानुभूति दिखाने के लिए दोषी ठहरा रहे थे। दिल्ली से यह भी घोषणा की जा रही थी कि सारे प्रकरण के दौरान कश्मीर घाटी के मात्र एक-दो पण्डित ही मारे गये थे और आगजनी के प्रकरण भी केवल छिटपुट ही थे। पण्डितों में विश्वास पैदा करने के लिए कहा जा रहा था कि मुख्यमन्त्री गुलाम मोहम्मद सादिक ने उनकी लगभग सभी माँगें स्वीकार कर ली हैं और हिन्दू नेता यहाँ 'नयी हिंसा की प्रयोगशाला' बनाने की कोशिश कर रहे हैं। उनका इशारा बलराज मधोक व अटल बिहारी वाजपेयी के हस्तक्षेप की ओर था और जो जनसंघ की बड़ौदा में होनेवाली आसन्न वर्किंग कमेटी मीटिंग की ओर था। गुलाम मोहम्मद सादिक भी कह रहे थे कि देश में राँची व अन्य जगहों में कश्मीर घाटी के पण्डितों के प्रश्न पर जनसंघ के लोग भड़काऊ वक्तव्यों द्वारा वहाँ का माहौल दूषित कर रहे हैं। जब हम मुड़कर देखते हैं कि आज जब कश्मीर घाटी में हुए जनसांख्यिक परिवर्त्तन से सभी समाजशास्त्री चौंक रहे हैं, उसकी सबसे पहली मौलिक समझ ७० के दशक के उत्तरार्द्ध में ही अटल बिहारी वाजपेयी और बलराज मधोक को आ गयी थी, जो साफ़ कह चुके थे कि जनसांख्यिक बदलाव कश्मीर में प्रजातन्त्र को सदैव के लिए समाप्त कर सकता है। पाकिस्तान का सदैव यह मन्तव्य था कि उसकी सीमा से लगे भारतीय प्रान्त में सहधर्मी बाहुल्य उनकी रणनीति को सदैव प्रभावी बनाये रखेगा। ५० के दशक के उत्तरार्द्ध में ही जब शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर में ५००० कजाख मुस्लिमों को बसने के लिए आमन्त्रित किया था और तिब्बत स्थित अनेक मुस्लिम परिवारों को श्रीनगर के पुराने ईदगाह में रहने की सुविधा दी थी, उस बृहद् कश्मीर की योजना पर कांग्रेसी नेता सदैव मौन धारण करते थे, जबकि पण्डितों की जनपलायन व विस्थापन की त्रासदी पर कोई प्रतिक्रिया नहीं प्रदर्शित की जाती थी। कठुआ में किस तरह कुछ ही वर्षों में मुस्लिम बहुसंख्यक कैसे बने, इसकी एक अलग कहानी रही है और छम्ब के निकटवर्त्ती क्षेत्रों की जिहादियों द्वारा अपनी रची हुई पटकथा के बारे में आज जानबूझकर भी हमारे रणनीति व विदेश नीति के व्याख्याता चुप रहते हैं। क्या हम भूल सकते हैं कि सन् १९४१ की जनगणना में कश्मीर घाटी में कुल जनसंख्या का १५ प्रतिशत कश्मीरी पण्डितों का था। सन् १९८१ में उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार यह ५ प्रतिशत से भी कम रह गयी और अब तो लगभग शून्य हो चुकी है।

(नयी दिल्ली से वामपन्थियों द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'लिंक' (साप्ताहिक) के सितम्बर १०, १९६७ और सितम्बर १७, १९६७ में प्रकाशित 'जनसंघ' पर विस्तृत टिप्पणियों के आधार पर है यह प्रस्तुति।)

□

– ए–१००२, पञ्चशील हाईट्स,
महावीर नगर, कान्दिवली (प.)
मुम्बई– ४०००६७

जब मैं श्री वाजपेयी को सुनता हूँ, तो उनकी गम्भीर आवाज़ और सुन्दर भाषा, मुझ पर जादू कर देती है।
– यशवन्तराव बलवन्तराव चव्हाण, गृहमन्त्री, उपप्रधानमन्त्री

नवीन जी का दस का नोट और अटल जी

मुझे स्मरण है कि एक बार अटल जी अन्तरविश्वविद्यालय वाद-विवाद प्रतियोगिता में विक्टोरिया कालेज ग्वालियर के प्रतिनिधि होकर प्रयाग के कार्यक्रम हेतु आये। गाड़ी विलम्ब से होने के कारण जब पहुँचे तो प्रतियोगिता समाप्त हो चुकी थी और निर्णय सुनाने की तैयारी हो रही थी। यात्रा की थकान चेहरे पर होने के बावजूद आग्रह किया कि हमारी टीम देर से पहुँची है, फिर भी किसी एक को बोलने का मौका दिया जाये। अनुमति मिलने पर जब अटल जी का धारा प्रवाह ओजस्वी भाषण हुआ, तो निर्णायकों के सारे निर्णय बदल गये, तब अटल जी को ही प्रथम पुरस्कार मिला। मैं स्वयं भी उस कार्यक्रम में उपस्थित था।

जब अटल जी कानपुर में पढ़ते थे, उस समय वहाँ की एक शर्मनाक घटना पर विद्यार्थियों की एक सभा हुई, जिसमें बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' अध्यक्ष थे। विद्यार्थियों की ओर से अटल जी का भाषण हुआ। वह इतना प्रभावी था कि 'नवीन' जी ने दस रुपये का नोट निकालकर कहा कि इस भाषण के बाद मुझे और कुछ कहना नहीं है। और मैं यह धन इस विद्यार्थी (अटल जी) को मिठाई खाने के लिए देता हूँ।
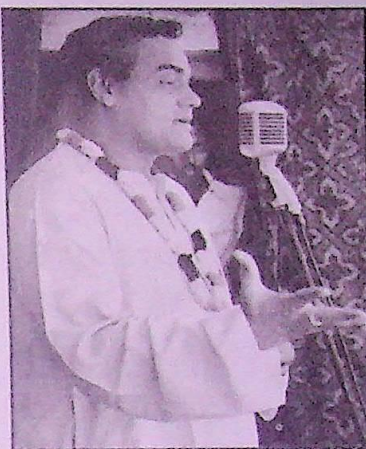
समाज के कठिनाई में पड़े वर्गों के प्रति अटल जी की बड़ी सद्भावना है। वे बड़े व्यावहारिक व्यक्ति हैं और भगवान् की कृपा से सभी क्षेत्रों में अपने कार्यों में सफल रहे हैं। उनके जीवन सम्बन्धी घटनाएँ सारे समाज के लिए प्रेरक रहेंगी। □

– राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया)
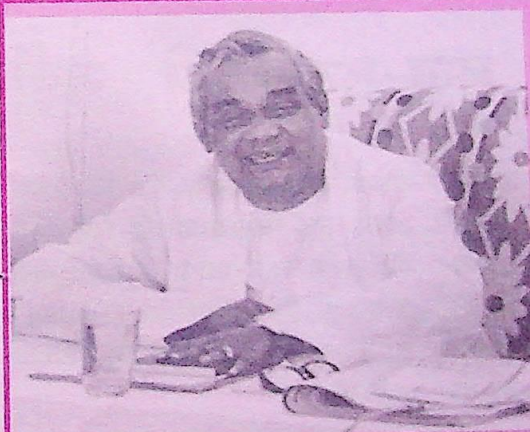
भारत रत्न पानेवाले पूर्व प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी ने वर्ष १९४६, १९४७ में डीएवी पीजी कॉलेज में प्रवेश लिया था और टॉपर बनकर निकले थे।

अटल जी और उनके पिता कृष्ण बिहारी वाजपेयी एल.एल.बी. में एक साथ पढ़ते समय डी.ए.वी. हॉस्टल के १०४ नम्बर कमरे में सादगी से रहते और खुद खाना बनाकर खाते थे।

भारत रत्न दिये जाने के अवसर पर डीएवी पीजी कॉलेज में उत्सव का वातावरण रहा। प्रिंसिपल डॉ. रेखा शर्मा की मौजूदगी में राजनीति विज्ञान की विभागाध्यक्ष डॉ. दीपशिखा चतुर्वेदी ने मिठाई बाँटी। विभाग में लगी उस मेरिट लिस्ट को सबको दिखाया, जिस पर अटल बिहारी वाजपेयी का नाम लिखा हुआ है। उन्होंने बताया कि वर्ष १९४७ में एमए राजनीति विज्ञान की पढ़ाई करनेवाले अटल जी ने कॉलेज में टॉप किया था। तब डीएवी कॉलेज आगरा यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध था। अटल जी का नाम आगरा यूनिवर्सिटी की मेरिट लिस्ट में भी था।

उनकी यूनिवर्सिटी रैंक दो थी। पहले स्थान पर अटल जी के ही मित्र त्रिलोकनाथ श्रीवास्तव का नाम है। तीसरी रैंक गिरिराज किशोर गहराना और चौथी रैंक ऊषा गुजराल की थी। राजनीति विज्ञान विभाग में आज भी अटल बिहारी वाजपेयी की यादें ताजा हैं।

जब अटल जी ने एडमिशन लिया था, तब राजनीति विज्ञान विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. शान्ति नारायण वर्मा थे। प्रिंसिपल थे डॉ. कालिका प्रसाद भटनागर, जिनके पास उस समय आगरा यूनिवर्सिटी के उपकुलपति (वाइस चान्सलर) का कार्यभार भी था।

□

'अटल जी देश के सर्वोच्च नेताओं में गिने जाते हैं। वे महान् तथा निर्भीक वक्ता हैं। उनके वक्तृत्व में, देशद्रोहियों को कम्पित तथा त्रस्त कर देने की शक्ति है। लोकतन्त्र को वे अन्तर्मन से चाहते हैं।'

– एस.के. पाटिल, कांग्रेस के शीर्ष नेता
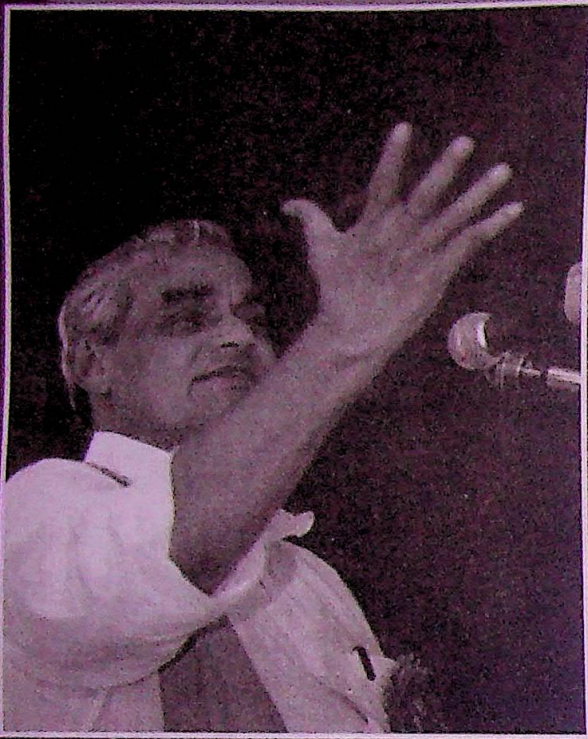
शारजाह में केरल के लोग काम करने के लिए गये। उन्होंने वहाँ क्लब बनाया हुआ है। उन्होंने वहाँ एक नाटक किया। वह नाटक ऐसा है, जिसके लिए उन्हें केरल में पुरस्कार मिल चुका है। अच्छे लेखक का नाटक है, अच्छा नाटक है; मगर शारजाह में खबर फैल गयी कि इस नाटक में मोहम्मद साहब का अपमान किया गया है। इसमें इस्लाम के खिलाफ बातें कही गयी हैं। वह नाटक करनेवाले गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हें छह–छह साल की सजा हुई है। वे जेल में पड़े हुए है। क्या इसकी प्रतिक्रिया नहीं होगी ?

राम का मन्दिर बनेगा पर छल-छद्म से नहीं

मैंने इस सदन में एक वायदा किया था, ५ दिसम्बर को लखनऊ में भाषण करते हुए मैंने उस वायदे को दोहराया था। श्री कल्याण सिंह जी ने सुप्रीम कोर्ट में एक शपथ–पत्र दिया था। आडवाणी जी अपने दौरे में लगातार उस बात को कह रहे थे, विवादित ढाँचे को क्षति पहुँचने नहीं दी जायेगी, यह हमारा भाषण था। इसलिए इस भाषण के साथ यह आशा भी थी, यह विश्वास भी था कि ६ दिसम्बर से पहले इलाहाबाद हाईकोर्ट की लखनऊ बेञ्च के सामने उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा भूमि के अधिग्रहण का जो मामला पड़ा है, उसका फैसला आ जायेगा।

हमने केन्द्र सरकार से कहा था, उत्तर प्रदेश की सरकार ने केन्द्र सरकार से कहा था, फैसला कैसा हो, यह तो हम नहीं कह सकते; मगर फैसला जल्दी हो, कब तक मुकदमा लटका रहेगा। केन्द्र सरकार ने हमारे साथ मिलकर, उत्तर प्रदेश की सरकार के साथ मिलकर अदालत में यह कहने से इन्कार कर दिया कि फैसला जल्दी होना चाहिए। जब कहा, बहुत देर हो गयी। चव्हाण साहब ने उस दिन कहा, जब बहस हो रही थी। फैसला ११ तारीख तक के लिए टाल दिया गया। ६ तारीख से कारसेवा का आयोजन था। जो इकट्ठे हुए थे, वे सोचते थे कि हमें कुछ काम करने का अवसर मिल जायेगा, नहीं मिला। फिर भी परिस्थिति पर काबू करने की कोशिश इस आशा से की गयी कि ११ तक के फैसले के लिए रुका जाये। नेतृत्व की पूरी कोशिश रही। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह वहाँ खड़े होकर कह रहे थे और अपनी भाषा में कह रहे थे, दक्षिण की भाषाओं में कह रहे थे कि अगर कोई स्वयंसेवक है, उसे ढाँचे की तरफ नहीं जाना चाहिए। उसे तोड़ने में हिस्सा नहीं लेना चाहिए। यह किसी को भ्रम में डालने की बात नहीं थी।

शारजाह में क्या हुआ ?

मैं शारजाह का उदाहरण देता हूँ। शारजाह में केरल के लोग काम करने के लिए गये। उन्होंने वहाँ क्लब बनाया हुआ है। उन्होंने वहाँ एक नाटक किया। वह नाटक ऐसा है, जिसके लिए उन्हें केरल में पुरस्कार मिल चुका है। अच्छे लेखक का नाटक है, अच्छा नाटक है; मगर शारजाह में खबर फैल गयी कि इस नाटक में मोहम्मद साहब का अपमान किया गया है। इसमें इस्लाम के खिलाफ बातें कही गयी हैं। वह नाटक करनेवाले गिरफ्तार कर लिये

गये। उन्हें छह-छह साल की सजा हुई है। वे जेल में पड़े हुए हैं। क्या इसकी प्रतिक्रिया नहीं होगी ? मैं नहीं जानता कि सरकारी स्तर पर इस मामले में क्या हुआ है ?

और एक उदाहरण है। एक व्यक्ति हिन्दुस्तान से काम करने के लिए विदेश गया। मैं देश का नाम नहीं लेता हूँ। शारजाह तो क्रिकेट के कारण जबान पर आ गया। अयोध्या में हर तीन महीने में मेले होते हैं; अगर छिप कर काम करना था; अगर चोरी से काम करना था; अगर योजना बनाकर तोड़ना था, तो इसके लिए कारसेवा की जरूरत नहीं थी। इसलिए जो हुआ, हमको दुःख है। वह व्यक्ति अपने साथ 'सत्यार्थ प्रकाश' की एक प्रति लेकर गया। वह 'सत्यार्थ प्रकाश' रोज पढ़ता है। धार्मिक व्यक्ति है, नौकरी के लिए गया था– चलो विदेश में ले जायें। पुराने जमाने में रामायण ले जाते थे, वह आर्य समाजी है और वह 'सत्यार्थ प्रकाश' की एक प्रति लेकर गया। वहाँ अकेले में पढ़ते रहेंगे, कुछ बल मिलेगा, ताकत मिलेगी। यह देश धर्म-विरोधी कभी नहीं हो सकता। न यह देश अधार्मिक को सकता है। सेकुलर का लोगों ने गलत अर्थ समझा। इसलिए भी सेकुलरवाद के प्रति लोगों के मन में अवज्ञा पैदा हो गयी। उस दिन भी मैंने कहा था आज मैं दोहराना चाहता हूँ।

'सत्यार्थ प्रकाश' रखना अपराध

क्या देश के बाहर जो घटनाएँ हो रही हैं, उसका असर नहीं होता है। मैं कह रहा था कि एक सज्जन 'सत्यार्थ प्रकाश' की प्रति ले गये। हवाई अड्डे पर उनका सामान देखा गया, प्रति पकड़ ली गयी और उन्हें जेल में बन्द कर दिया गया। बड़े प्रयत्न करने के बाद, विदेश मन्त्रालय जानता है, छुड़ाया गया। मैं नाम का उल्लेख जान-बूझकर नहीं कर रहा हूँ। हम ऐसे देशों के साथ भी सम्बन्ध रखना चाहते हैं। हम उनकी नकल नहीं करना चाहते हैं; लेकिन ऐसे समाचार यहाँ आते हैं। क्या इससे कटुता नहीं बढ़ती कि वे हमारे साथ क्या कर रहे हैं ? वह ढाँचा ढह गया, इसके लिए खेद कम हो गया तब से, जब से ये खबरें आ रही हैं कि पाकिस्तान में मिनिस्टर ने खड़े होकर बुलडोजर का उपयोग करके मन्दिर गिरा दिये। वहाँ मन्दिर ढहाने का कौन-सा प्रोवोकेशन है ? यहाँ सरकार स्थिति पर काबू पाने की कोशिश कर रही है, गोलियाँ चला रही है। एक हजार से अधिक लोग मारे गये हैं। यह बात अलग है कि जब लाशें गिनने का मौका आता है, तो किस प्रदेश में कितने मरे, महाराष्ट्र में कितने मरे और गुजरात में कितने मरे और पश्चिम बंगाल में कितने मरे, यह सवाल खड़ा होता है। अरे, मरने वाला भारतीय है, यह नहीं भूलना चाहिए। शोक-सन्तप्त परिवारों के साथ हमारी सहानुभूति है।

लड़ाई मन्दिर की नहीं, मानसिकता की है

मैं एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाना चाहता हूँ। इस देश में जो कुछ हो रहा है, वह मन्दिर की लड़ाई नहीं, वह एक मानसिकता की लड़ाई है। इस देश का राष्ट्रवाद क्या है ? इस देश की जड़ें कहाँ हैं ? यह देश किन जड़ों से पानी लेगा ? किन जड़ों से जीवन ग्रहण करेगा ? यह ठीक है कि देश मे तरह-तरह के लोग आये, सदियों से आये। पीढ़ियाँ यहाँ बसी हैं, रह गयी हैं, अलग-अलग राज्य थे; मगर यह राष्ट्र एक रहा। कहीं आने-जाने के लिए पासपोर्ट की जरूरत नहीं थी। तीर्थ-यात्रा के लिए परमिट लेकर नहीं जाते थे। यह देश एक था। किसके बल पर एक था। गंगा-यमुना संस्कृति की बात होती है। गंगा यमुना से मिलती है, वहाँ संगम होता है; मगर संगम के बाद गंगा सबको समेटती हुई आगे बढ़ती है।

'मुस्लिम इण्डिया' रहेगा, तो 'हिन्दू इण्डिया' भी आयेगा

मेरे मित्र शहाबुद्दीन यहाँ बैठे हुए हैं। मैं उन्हें मित्र कह रहा हूँ। मेरी पार्टी वाले इस शब्द को पसन्द नहीं

भूल सुधार

कृपया

१. पृष्ठ २ पर द्वितीय पैरा, पाँचवीं पंक्ति में **चने** के स्थान पर **चलने** पढ़ें।
२. पृष्ठ ३ अन्तिम पैरा में **शुभगामनाएँ** के स्थान पर **शुभकामनाएँ** पढ़ें।
३. पृष्ठ ४३ द्वितीय स्तम्भ, पाँचवीं पंक्ति में **१९३६ से १९३८** के स्थान पर **१९३६ से १९३८** पढ़ें।
४. पृष्ठ ५५, स्तम्भ तृतीय, पंक्ति द्वितीय में **द्वितीय सरसंघचालक** के स्थान पर **तृतीय सरसंघचालक** पढ़ें।
५. पृष्ठ ३२ व पृष्ठ ८७ पर भूलवश **एक ही फिलर** दो बार छप गया है। भूल के लिए खेद है। अपनी प्रति में यथास्थान संशोधन करने का कष्ट करें।

– सम्पादक

करेंगे; लेकिन यह व्यवहार का एक सभ्य तरीका है। मैं विदेश मन्त्री था, तो शहाबुद्दीन हमारे मन्त्रालय में काम करते थे। इनकी ख्याति थी कि ये प्रोग्रेसिव मुसलमान हैं; क्योंकि फेडरेशन से शायद सम्बन्धित रहे थे। हम इन्हें एक देश में भेजना चाहते थे। मैं नाम नहीं लूँगा। उस देश ने कहा कि आप किसी और को भेजो। वह कट्टरपन्थी देश था। यह शहाबुद्दीन साहब की ख्याति थी। फिर अपनी फॉरेन सर्विस छोड़ गये और वकालत करने चले गये। मेरे ऊपर, मेरी पार्टी वाले आरोप लगाते हैं कि तुम लाये हो उसको, तुम जनता पार्टी में लाये हो। एक और सज्जन को लाने का मेरे ऊपर आरोप है। मैं उनका नाम नहीं लूँगा; लेकिन अब मिस्टर शहाबुद्दीन में जो परिवर्तन हो गया है वह चौंकाने वाला है– 'मुस्लिम इण्डिया।' अगर 'मुस्लिम इण्डिया' अखबार निकलेगा तो 'हिन्दू इण्डिया' क्यों नहीं निकलेगा ? मामला इतना सरल नहीं है। मैं जानता हूँ कि शहाबुद्दीन बहुत आर्टिकुलेट हैं और इस बात का अच्छा जवाब देंगे। पत्र में बहुत सारी सामग्री प्रकाशित करते हैं, लेकिन कुल मिलाकर पत्र वातावरण बिगाड़ रहा है। अयोध्या एक ट्रेजेडी है। राम का मन्दिर छल और छद्म से नहीं बनेगा। राम का मन्दिर अगर बनेगा तो एक नैतिक विश्वास के बल पर बनेगा; अगर ढाँचा तोड़ने का इरादा होता, तो ढाँचा तोड़ने के लिए वहाँ कारसेवक इकट्ठा करने की जरूरत नहीं थी। अयोध्या एक ट्रेजेडी है। मैंने कहा कि देश तिराहे पर खड़ा है। यह दोषारोपण का समय नहीं है। आप हम पर जितना दोषारोपण करेंगे, हम उतना ही सुर्खरू होंगे। आप हमें जितना दबायेंगे, हम उतना ही ऊपर उठेंगे। आप लोगों की मानसिकता नहीं समझ रहे हैं। आप नहीं समझ रहे हैं कि प्रधानमन्त्री की इस घोषणा ने कितना नुकसान किया है कि वहाँ मस्जिद बनेगी। इतनी जल्दी घोषणा करने की क्या जरूरत थी ? क्या बाहरी दबाव में की गयी ? पहले यह तय क्यों नहीं कर लेते कि वहाँ मन्दिर था या मस्जिद थी ? और वह स्थान केन्द्र के पास है। 'ऑर्कलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया' को कहिये कि आप वहाँ खोद कर देखो। पता लगायें कि मन्दिर था या नहीं ? एक बार इस प्रश्न का निपटारा हो जाना चाहिए। चन्द्रशेखर जी करना चाहते थे और राजीव जी का उन्हें सहयोग प्राप्त था। चन्द्रशेखर जी ने वार्ता करायी। अच्छे वातावरण में वार्त्ता करायी और कई दस्तावेज इकट्ठे किये गये कुछ परिणाम निकलनेवाला था, उनकी सरकार चली गयी। कुछ परिणाम निकलने से पहले कहीं यह सरकार न चली जाये। हमारा विश्वास था कि वहाँ मन्दिर था। अगर यह सिद्ध हो जाये कि वहाँ मन्दिर था और अदालत कह दे, तो सबको मानना पड़ेगा।

(पी.वी. नरसिंहराव सरकार के प्रति अविश्वास प्रस्ताव पर १७ दिसम्बर, १९९२ को संसद में दिया गया भाषण।)

(अटल जी की पारिवारिक पृष्ठभूमि भी उनके कवि जीवन में अनुस्यूत है, उनके सबसे बड़े भाई का यह निम्न छन्द द्योतक है। – सम्पादक)

'श्यामलाल वाजपेयी बाबा जो विदित नाम
पण्डित प्रचण्ड जाकी प्रतिभा प्रकासी है,
पाठन–पठन में बिताए तीन पन दीन्हें
आसपास जासु योग्यता की धाक खासी है,
गुनिन को ग्राहक, गुमानिन गुमान भरो
साधु, सन्त, भक्तन की सेवा अभिलासी है,
श्रेष्ठ कान्यकुब्ज वंश अवतंस 'अवधेश'
आगरा जिले को सुबटेसुर निवासी है।'

– पं. अवध बिहारी वाजपेयी

स्मृति शेष

बड़े दुःख का विषय है कि अपने 'राष्ट्रधर्म' (मासिक) के अभिकर्त्ता एवं संघ के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता श्री श्रीप्रकाश नारायण मिश्र (भाषा जी) का मार्ग दुर्घटना में गम्भीर रूप से घायल हो जाने के कारण दिनांक २५ मई, २०१५ को प्रातः ५ बजे निधन हो गया। राष्ट्रधर्म परिवार भगवान से प्रार्थना करता है कि उनकी आत्मा को शान्ति तथा उनके परिवार को इस दुःखद घड़ी को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति!!

समावेशी विकास..... समृद्ध राज्य

राज्यों की प्रगति..... देश की प्रगति

सशक्त भारत की आधारशिला सशक्त राज्य।

ऐतिहासिक पहल...

केन्द्र सरकार द्वारा केन्द्रीय पूल में से राज्यांश में 10 प्रतिशत की वृद्धि।
राज्यांश को बढ़ाकर 42 फीसदी किया गया।
राज्य के साथ सशक्त आधार पर संरचनात्मक सहयोग की पहल
और तंत्रों के माध्यम से सशक्त एवं आत्मनिर्भर राज्यों के निर्माण हेतु

माननीय प्रधानमंत्री जी को कोटि-कोटि आभार...

हम सब मिलकर प्रधानमंत्री जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय एजेन्डा के तहत् कार्य करने को प्रतिबद्ध हैं

राज्य को फायदे :

- पैसे के इस्तेमाल में आत्मनिर्भरता
- नीति निर्माण की स्वतंत्रता।
- विनिवेश पर लाभ।

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग द्वारा जनहित में जारी

लखनऊ आर.एम.एस. नान टी.डी. : २४, २५, २६, २७
आर.एन.आई.पंजी.क्रमांक-६७०१/६४ जून-२०१५ पंजी. क्र. एस.एस.पी./एल.डब्ल्यू./एन.पी.-२११/२०१५-१७

स्वत्वाधिकारी राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ के लिए मुद्रक, प्रकाशक सत्येन्द्र पाल बेदी द्वारा नूतन ऑफसेट मुद्रण केन्द्र, राजेन्द्र नगर, लखनऊ से मुद्रित व संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ से प्रकाशित - सम्पादक : आनन्द मिश्र 'अभय'